Chap-1

Hansa Mehta Library

प्रथम अध्याय

व्यंग्य का स्वरूप एवं शैली वैज्ञानिक दृष्टिकोण

व्यंग्य का शास्त्रीय अध्ययन

व्यंग्य की पाश्चात्य व्युत्पत्ति, व्यंग्य की भारतीय व्युत्पत्ति, व्यंग और व्यंग्य, व्यंग्य की परिभाषा एवं स्वरूप, स्वरूपतः हास्य प्रभेद और व्यंग्य, व्यंग्य के तत्त्व, व्यंग्य का उद्देश्य एवं प्रयोजन, व्यंग्य के प्रकार।

शैली वैज्ञानिक चिंतन

'शैली' का स्वरूप विवेचन, शैली विषयक परिभाषाएँ, शैलीविज्ञान, शैलीविज्ञान विषयक परिभाषाएँ, शैली वैज्ञानिक अनुशीलन से तात्पर्य, शैलीविज्ञान के संदर्भ में भाषा के विविध रूप।

प्रथम अध्याय

व्यंग्य का स्वरूप एवं शैली वैज्ञानिक दृष्टिकोण

व्यंग्य का शास्त्रीय अध्ययन

व्यंग्य की पाश्चात्य व्युत्पत्ति

व्यंग्य साहित्य की आधुनिक विधा है। भारतीय काव्यशास्त्र एवं भारतीय साहित्य में इसके शास्त्रीय रूप की चर्चा नहीं की गई है। भारतीय या संस्कृत भाषा के साहित्य में व्यंग्य, हास्य और विनोदात्मक रचनाएँ उपलब्ध तो होती है किन्तु काव्याचार्यों ने व्यंग्य के स्वतंत्र स्वरूप का चिन्तन नहीं किया। पश्चिम के विद्वानों ने ही इसके स्वरूप पर स्वतंत्र रूप से विचार किया है। इसका जन्म कैसे हुआ, इस संदर्भ में इस प्रकार का अभिमत है।

"(व्यंग्य) सटायर का जन्म दृश्य काव्य से हुआ। रोमन्स तथा यूनानी दोनों ही अपने को इसका जन्मदाता मानते हैं। जूलियस 'स्केलिगर' तथा 'हैसियस' जो यूनानी विद्वान हैं उनका कहना है कि रोमन्स ने इसे यूनान से प्राप्त किया तथा 'रिगलशियस' और 'कैसाबन' जो रोमन विद्वान हैं वे कहते हैं यूनान ने उनसे इसे प्राप्त किया है। 'सर्टरस' एक विचित्र प्रकार का जन्तु होता है जिसके आधार पर इसका नामकरण हुआ है।"[1]

व्यंग्थ का मूल लेटिन के 'Satira' शब्द से खोजा गया। बाद में 'Satira' से 'Satura' (सटूरा) हो गया। ग्रीस में फलों की प्रथम फसल की कटाई की खुशी में नकल या स्वांग के रूप में जो ग्रामीणोत्सव होता था उसके लिए 'सटायर' शब्द का प्रयोग हुआ है। मूल ग्रीक शब्द 'Satyr' है, जो कुछ समय तक 'Satyros' और 'Satura' के बीच भ्रम पैदा करता रहा। किन्तु बाद में 'Satyre' से विकसित होकर अंग्रेजी में 'Satire' के रूप में प्रचलित हो गया।

पाश्चात्य विद्वान पाट्स के अनुसार - "व्यंग्य - "सेटायर" शब्द लाटिन शब्द "Satyra" (जिसका अर्थ "गडबडझाला" है) से विकास हुआ है। "सेतुरा" के कम से कम दो रूप विकसित हुए थे, जिसका एक रूप बाद में भी प्रचलित रहा और यह रूप पद्य-निबंध के समान था। पुरातनकाल में "सेतुरा" शब्द "परनिंदा" के अर्थ में प्रयुक्त होता था, और इस ऐतिहासिक अर्थ की छाया वर्तमान "सेटायर" शब्द पर भी पड़ी है, अब "सेटायर" में केवल परनिंदा नहीं होती, कुछ बातों में परिवर्तन होता है, आलम्बन

की खिचाई होती है अथवा आलम्बन की तुलना चिढ़ाने योग्य, बदनाम या धृणास्पद वस्तु से की जाती है या बात को उलट दिया जाता है या तो उसे बातों में ही उड़ा दिया जाता है"[2]

व्युत्पत्तिपरक शब्द के रूप में 'Satire' (सटायर) पाश्चात्य साहित्य में विवादास्पद हुआ है। पाश्चात्य साहित्यकारों ने 'सटायर' के विभिन्न अर्थ बताये हैं। किन्तु आज अंग्रेजी का 'Satire' हिन्दी में 'व्यंग्य' के रूप में प्रचलित हो पाया है।

व्यंग्य की भारतीय व्युत्पत्ति

'व्यंग्य' संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी गई है – "वि अञ्ज् + ण्यत् से व्यङ्ग्य शब्द निष्पन्न होता है। इसमें 'वि' उपसर्ग 'अञ्ज्' धातु और 'ण्यत्' प्रत्यय है। पाणिनी सूत्र "ऋहलोर्ण्यत्" (3/1/124) के अनुसार यत् प्रत्यय होता है। "इलन्त्यर्म्" (1/3/3) - इस सूत्र से तकार की इत् संज्ञा होती है। "चुटू" (1/3/7) - इस सूत्र से प्रत्यय के आदि में रहनेवाले च वर्ग और ट वर्ग की इत् संज्ञा होती है। "तस्यू लोपः" – उस इत् संज्ञक वर्ण का लोप होता है। इस नियम से "ण" और "त" का लोप हुआ। अतः वि + अञ्ज् + यत् को वि + अञ्ज् + य रूप बना। "चजोः कुधिण्ण्यतोः" (7/3/52) - इस सूत्र से "ज" के स्थान पर ण्यत् प्रत्यय आगे आने से "ग" हो गया। अतः वि + अञ्ज् + य से वि + अज्ग् + य बना। "अनुस्वारस्यययि परसवर्णः" (8/4/58) - इस सूत्र से "ज्" के स्थान में परसवर्ण "ङ" हो गया तब वि + अङ्ग्य हुआ। "इकोयणचि" (6/1/57) - इस सूत्र से इ के स्थान पर "य" हो गया तब "व्यङ्ग्य" रूप बना। पुनश्चः वि + अञ्ज् + ण्यत् > वि + अञ्ज + य > वि + अङ्ग्य > व्यङ्ग्य"[3]

प्राचीन संस्कृत साहित्य में व्यंग्य का जो प्रयोग हुआ है वह आधुनिक व्यंग्य के अर्थ में नहीं है। भारतीय काव्यशास्त्र में व्यंग्य को ध्वनि के अंतर्गत मानकर व्यंग्यार्थ के रूप में स्वीकारा गया है।

कवि विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण" में तीन प्रकार की शब्द शक्तियाँ बताई हैं। (i) अमिधा (ii) लक्षणा (iii) व्यंजना।
इसके अर्थ इस प्रकार होते है।

(i) वाच्यार्थ
(ii) लक्ष्यार्थ
(iii) व्यंग्यार्थ

वाच्यार्थ अमिधा शक्ति से,लक्ष्यार्थ लक्षणा शक्ति से तथा व्यंग्यार्थ व्यंजना शक्ति से प्राप्त होता है।

"विरतार्स्वभिधाधासु ययाडर्थो बोध्यते पर :।
सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।।"[4]

अभिधा और लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराकर विरत हो जाती हैं, तब जिस शब्दशक्ति के द्वारा अर्थ (व्यंग्यार्थ) ज्ञात होता है उसे व्यंजना शब्दशक्ति कहते हैं। अत: अभिधा आदि शक्ति के शांत हो जाने पर भी व्यंजना शाक्ति शब्द और अर्थ को व्यंजित करती है। यह अर्थ वाच्य और लक्ष्य से भिन्न विलक्षण होता है।

हिन्दी साहित्य कोश में व्यंग्य की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी गयी है।

"वि + अंग = व्यंग्य"[5]

डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी के मतानुसार - " ध्वनी' और 'विक्रोक्ति' जैसे शब्दों के मिलते-जुलते अर्थ के विराट संवाहक के रूप में 'व्यंग्य' की परिकल्पना की जा सकती है।"[6]

इस प्रकार व्यंग्य की व्युत्पत्ति के संदर्भ में अनेक भारतीय विद्वानों ने अपने अभिप्राय प्रकट किये हैं।

व्यंग और व्यंग्य

कई भारतीय विवेचकों ने 'व्यंग्य' के लिए 'व्यंग' शब्द का प्रयोग किया है। डॉ. विरेन्द्र मेंहदीर्त्तों के अनुसार - "संस्कृत 'व्यंग्य' शब्द व्यंजना शक्ति द्वारा प्राप्त साधारण से कुछ भिन्न अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा है। हिन्दी में इसी अर्थ में व्यंग्य शब्द का प्रयोग पर्याप्त होता है। इसलिए उचित होगा कि व्यंग्य शब्द को संस्कृत से चले आ राहे परम्परागत अर्थ को व्यक्त करने के लिए छोड़कर "Satire" शब्द के अर्थ बोध के लिए 'व्यंग' शब्द प्रयुक्त किया जाय।"[7]

जयशंकर प्रसाद, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी जैसे विद्वानों ने अपने साहित्य में 'व्यंग्य' के लिए 'व्यंग' शब्द का प्रयोग किया है। शरद जोशी कहते हैं कि - "माफ करें, मैं व्यंग लिखता हूँ, व्यंग्य नहीं। 'व्यंग्य' बोलने में मुझे कठिन लगता है।"[8]

संस्कृत कोशों में 'व्यंग' शब्द का अर्थ "शरीरहीन, विकलांग, मेढ़क, गाल पर के काले दाग"[9] आदि बताया है।

प्रखर व्यंग्यालोचक डॉ. भगवानदास कहार.ने 'व्यंग' शब्द का खण्डन करते

हुए 'व्यंग्य' के प्रयोग को ही समीचीन माना है। " वि + अंग = व्यंग, जिसका अर्थ होता है विगत्तम् अंगम् यस्य स: (बहुव्रीहि) अर्थात जो विकलांग है वह। प्रस्तुत 'व्यंग शब्द या संज्ञा से बना है जबकि 'व्यंग्य' धातु से बना हुआ है। और दोनों का व्युत्पत्यर्थ अलग-अलग है। अत: इसे 'सैटायर' के अर्थ में रूढ कर देना अनुचित ही होगा। संस्कृत 'व्यंग्य' शब्द व्यंजना शक्ति पर आधारित है। वह चाहे शब्द-शक्ति के एक सुनिश्चित परम्परित अर्थ का बोधक क्यों न हो, किन्तु अपने अर्थ-बल की शक्ति के स्तर पर अंग्रेजी के 'सैटायर' से कहीं अधिक व्यापक है। उसमें "सैटायर" के अर्थ को भी आत्मसात् कर लेने की असीम शक्ति और क्षमता विद्यमान है।"[10]

हिन्दी के अधिकांश व्यंग्य समीक्षकों ने 'व्यंग्य' शब्द का ही प्रयोग किया है। आज हिन्दी में 'व्यंग्य' शब्द अंग्रेजी 'Satire' के पर्याय रूप में ही स्वीकृत हुआ है।

व्यंग्य की परिभाषा एवं स्वरूप

पाश्चात्य विद्वानों की व्यंग्य विषयक परिभाषाएँ

व्यंग्य की व्याख्या एवं स्वरूप विश्लेषण में पश्चिमी विंद्वानों ने अपने विभिन्न मंतव्य प्रस्तुत किये हैं। इसके द्वारा व्यंग्य के विविध पहलुओं पर विचार करके बहुत सी व्याख्याएँ उपलब्ध होती है।

ओक्सफोर्ड इग्लिश डिक्षनरी के अनुसार " A poem or in modern use sometime a prose composition, in which prevailing vice or follier are held up to ridicule, sometime less correctly, applied to composition in verse or prose intended to ridicule a particular person or class of persons, a lampoon."[11]

अर्थात् "व्यंग्य वह पद्यमय अथवा गद्य रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं पर अतिशयोक्ति के साथ उपहास किया जाता है। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति अथवा समाज के किसी वर्ग का उपहास करना होता है। जो एक निन्दा-लेख के समान होता है।"

वैब्सटर्स न्यू इंग्लिश डिक्षनरी के अनुसार - "ऐसी साहित्यिक रचना, जो मानवीय और व्यक्तिगत दोषों, मूर्खताओं, दुर्बलताओं और अभावों को निन्दा आलोचना या ठिठोली किवा अन्य माध्यमों द्वारा रोकती है - व्यंग्य कहलाती है।"[12]

इन्साइक्लोंपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार - Satire in its literary aspect

may be defined as the expression in adequate terms of sense of amusement or disgust excited by the ridiculous or tunseemly, provided that humour is a distinctly, recgonizable element and that the utterance is invested with literary form, without humour sative is invective; without literary form, it is more clownish feeling."[13]

अर्थात् "साहित्यिक दृष्टि से व्यंग्य उपहासास्पद अथवा अनुचित वस्तुओं से उत्पन्न विनोद या धृणा के भाव को समुचित रूप से अभिव्यक्त करने की संज्ञा है जिसमें हास का भाव अपेक्षित हो और उक्ति साहित्यिक हो। हास्य के अभाव से व्यंग्य गाली का रूप ले लेता है तथा साहित्यिकता के अभाव में विदूषक की ठिठोली मात्र बन जाता है।"

मेरिडिथ के अनुसार - "If you dictect the ridicule and your kindness is chilled by it, you are stipping into the grasp of satire"[14]

अर्थात् "यदि आप हास्यास्पद का इतना अधिक मज़ाक उड़ाते है कि उसमें दयालुता ही समाप्त हो जाय तो आप व्यंग्य की सीमाओं में प्रवेश कर जाते हैं।"

जोन एम. बुलिट के अनुसार - "Whether good or bad, general or particular, true or false, savage or humourous, prosoic or poetic - any literary attack upon the vice of holly of man and manners may be contained under the general word 'Satire'."[15]

अर्थात् "मनुष्य अथवा उसके आचारों की मुर्खताओं या सदोषता पर किया गया साहित्यिक प्रहार, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, सामान्य हो या विशिष्ट, सत्य हो या असत्य, क्रूर हो या हास्यास्पद, गद्य हो या पद्यमय - सब 'व्यंग्य' शब्द के अन्तर्गत हैं।"

एल. जे. पोट्स के अनुसार - "व्यंग्य गाली-गलौज या व्यक्तिगत आक्षेप मात्र नहीं है। उसमें आलम्बन के विकृत रूप का उपहास किया जाता है अथवा वचन-वैदग्ध्य के माध्यम से उसकी तुलना किसी हास्यास्पद वस्तु के साथ की जाती है।"[16]

कवि स्विफ्ट के अनुसार - "Satire is a sort of glass, where is beholders generally discover everybody's face, but their own, which is the chief reason for the reception it meets in the world and that

so very few are affended with it."[17]

अर्थात "व्यंग्य एक प्रकार का शीशा है जिसमें देखनेवाले को अपने चेहरे के अतिरिक्त प्रत्येक का चेहरा दिखाई देता है। यही मुख्य कारण है कि विश्व में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा कुछ लोग इससे अप्रसन्न होते है।"

भारतीय विद्वानों की व्यंग्य विषयक परिभाषाएँ

पाश्चात्य साहित्य में 18 वी सदी में व्यंग्य विधा के रूप में समृद्ध एवं सुविकसित हो गया था तब भारतीय साहित्य में हास्य-व्यंग्य का रूप प्रचलित तो था, किन्तु उसे स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकारा नहीं गया था। भारतेन्दु युग के व्यंग्यकारों ने एक स्वतंत्र विधा का रूप देकर इसका श्रीगणेश किया। तब भी व्यंग्य की शास्त्रीय परिभाषा का अभाव ही रहा था। द्वितिय विश्व युद्ध के पश्चात भारतीय साहित्यकार पश्चिमी साहित्य के इस रूप से प्रभावित हुआ भारत की स्वतंत्र्यता तक व्यंग्य विधा की पृष्ठभूमि संपूर्ण तैयार हो चुकी थी। व्यंग्य की भारतीय विद्वानो द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नांकित हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "व्यंग्य वह है जहाँ, कहनेवाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वालों को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"[18]

कई समीक्षकों ने व्यंग्य की सृष्टि के लिए हास्य को अनिवार्य माना है।

रामकुमार वर्मा के अनुसार - "आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।"[19]

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी के मतानुसार "आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना को लेकर बढनेवाला हास्य ही व्यंग्य कहलाता है।"[20]

डॉ. कृष्णदेव झारी ने व्यंग्य को हास्य के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है कि "जब हास्य में कटुता आ जाती है तो वह हास्य व्यंग्य कहलाता है।"[21]

प्रेमनारायण शुक्ल ने व्यंग्य को मानव कल्याण की उद्देश्यपूर्ण साहित्यक रचना बताया है। "मानव मात्र के सामूहिक सुधार का उद्देश्य लेकर आलोचनात्मक दृष्टिकोण के साथ विनोद तथा वाक्पटुत्त्वपूर्ण साहित्य रचना की प्रणाली का नाम उपहास व्यंग्य है।"[22]

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को जीवन के साथ जोड़ा है "व्यंग्य जीवन से

साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"[23]

डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्तौं ने विसंगतियों पर साहित्यक प्रहार करने की वृत्ति को व्यंग्य कहा है। "व्यंग्य मानव जगत् की मूर्खताओं तथा अनाचारों, असंगतियों तथा विसंगतियों को प्रकाश में लेकर उनके उपहास्य अथवा धृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक, साहित्यिक अभिव्यक्ति है।"[24]

डॉ. शांतारानी के अनुसार - "व्यंग्य किसी संस्था, समाज, व्यक्ति अथवा समूह की दूर्बलताओं तथा अवगुणों का उद्‌घाटन कर उस पर आक्षेप करता है।"[25]

शेरजंग गर्ग का कहना है कि "व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है जिस में व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं और कथनी-करनी के अन्तरों की समीक्षा अथवा निन्दा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए गम्भीर हो सकती है। निर्दय लगते हुए दयालु हो सकती है। प्रहारात्मक होते हुए तटस्थ लग सकती है। मखौल लगते हुए बौद्धिक हो सकती है। अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की स्थिति अनिवार्य है।"[26]

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी के अनुसार - "व्यंग्य एक विशिष्ट समाज धर्मी प्रेक्षणाविधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है जिसका उद्‌भव अंतर्विरोधों के कारण होता है और जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्था विशेष के दौर्बल्य की अपेक्षात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभीष्ट पूर्ण होता है।"[27]

डॉ. भगवानदास कहार के अनुसार "वस्तुतः व्यंग्य संयम एवं विवेकपूर्ण शाब्दिक प्रहार की वह कलात्मक और व्यंजनापूर्ण साहित्यिक अभिव्यक्ति या एक विशिष्ट प्रविधि है जो विसंगतियों को अर्जुन के लक्ष्यवेधी अमोध तीर की तरह निर्मूल कर अपने अभीष्ट को पूर्ण करती है।"[28]

डॉ. सुरेश महेश्वरी के शब्दों में कहे तो - "व्यंग्य युगीन विसंगतियों को वेदग्ध्यपूर्ण शैली में जीवन का तीखा प्रहारात्मक स्वर है।"[29]

ऊपयुक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी ने व्यंग्य में हास्य

तत्त्व की अनिवार्यता मानी तो किसी ने व्यंग्य को आक्रोश की अभिव्यक्ति कहा है। वस्तुत: व्यंग्य विचारों की वह बौद्धिक विधा है जिसमें जीवन की रीति-नीति का सार समाहित होता है। देश एवं समाज में व्याप्त विसंगतियों को प्रहारात्मक रूप से उजागर करने के उद्देश्य से व्यंग्य,साहित्य की एक विशिष्ट विधा है।

व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो पाठक को बाहरी रूप से मनोरंजन तो प्रदान करती ही है साथ ही गंभीर मनन के लिए बाध्य भी कर देती है। व्यंग्य उस 'कुनैन की गोली' के समान है, जो अत्यंत कडुवी होते हुए भी जीवन के स्वास्थ की रक्षा करती है। व्यंग्य वह तीक्ष्ण बाण है, जो पाठक के हृदय को अन्दर तक दिधीर्ण कर जाता है। "The flashing lighting terrifies the evil do eres, while purifies the air. Such as satire when great and earnest."[30]

अर्थात् ("जैसे बिजली कड़क कर अनाचारी को डराती है तथा वायु को शुद्ध भी करती है उसी प्रकार पूरी ईमानदारी के साथ लिखे गये व्यंग्य साहित्य का स्वरूप है।")

पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर व्यंग्य की स्वरूपगत विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है।

1) व्यंग्य गद्य अथवा पद्यमय रचना है।
2) व्यंग्य में मनुष्य की मूर्खताओं तथा दुर्बलताओं की निन्दा या आलोचना की जाती हैं।
3) बिना हास्य के व्यंग्य गाली-गलौच या आक्षेप सा लगेगा, हास्य का भाव आने से व्यंग्य साहित्यिक रूप प्राप्त करता हैं।
4) व्यंग्य युगीन विसंगतियों को दृष्टिगत करानेवाला आइना हैं।
5) व्यंग्य का शाब्दिक प्रहार तेज अस्तरे जैसा है, जिसके स्पर्श मात्र से घाव हो जाए तो पता भी न चले।
6) व्यंग्य अभावों तथा व्यक्तिगत दोषों के सुधार हेतु किया जाता है।

स्वरूपत: हास्य प्रभेद और व्यंग्य

पश्चिमी साहित्य में व्यंग्य को हास्य के प्रभेद के रूप में स्वीकृत किया गया है। पश्चिमी समीक्षकों ने 'कोमेडी' के संदर्भ में हास्य के निम्नांकित भेद किये हैं।

1) स्मित हास्य (Humour)
2) व्यंग्य (Satire)

3) वाग वैद्ग्ध्य (Wit)

4) वक्रोक्ति (Irony)

5) प्रहसन (Force)

6) पेरौडी (Parody)

उपर्युक्त भेद के अलावा विचारकों ने उपहास (सर्काज्म) और परिहास (स्पोर्ट, जेस्ट, प्लैजैंटरी) को भी हास्य के भेद के अंतर्गत माना हैं। हास्य के यह भेद व्यंग्य के मूल रूप से किसी न किसी प्रकार भिन्न हैं। इस भेद रेखा की सूक्ष्मता को समझते हुए इसका अन्तर स्पष्ट करना अत्यंत आवश्यक है।

स्मित हास्य और व्यंग्य

स्मित का साम्य होने के कारण हास्य के प्रथम स्वरूप को स्मित कहा गया है। पाश्चात्य साहित्यकारों ने हास्य में करूणा एवं सहानुभूति जैसे भावों का भी समावेश किया है। मेरिडिथ के अनुसार - "The stroke of the great humourist is world wide with light of tragedy in his laughter"[31]

भारतीय साहित्य में रजोगुण के अभाव और सत्वगुण के आर्विभाव से हास्य की संभावना बताई है। "स श्रृंगार इतीरत:। तस्मादेव रजोहीनात्सभत्वाद् हास्य सम्भव:।"[32]

बरसानेलाल चतुर्वेदी के अनुसार "स्मित हास्य वास्तव में करूणा सिक्त हास है। मुक्त हास है तथा सजल है।..... आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़नेवाला हास्य, व्यंग्य कहलाता है। हिन्दी साहित्य में हास्य का यह प्रभेद प्रचुर मात्रा में मिलता है।"[33] चतुर्वेदी ने व्यंग्य को हास्य का भेद स्वीकार करके पाश्चात्य समीक्षकों का समर्थन किया है।

हास्य निष्प्रयोजन और स्वच्छन्द होता है। हास्यपरक रचना को सुनने या पढने के बाद जो हास्य उत्पन्न होता है, वह क्षणिक है। हास्य मुक्त एवं संवेदनशील होता है। हास्य आनंद प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता, जबकि व्यंग्य प्रयोजन बद्ध होता है तथा पाखण्ड का पर्दाफाश करता है। व्यंग्य को पढ़ने से या सुनने से हास्य उत्पन्न होता है, साथ में वाचक या श्रोता को सोचने पर प्रेरित करता है। व्यंग्य संवेदनशील और गूढ़ होता है।

हास्य हृदय के भावों को तथा व्यंग्य बुद्धिगत चेतना को जागृत करता है। उषा शर्मा के अनुसार - "हास्य अस्थायी भाव है। यह उस विद्युत छटा के समान है

जो क्षण भर में चकाचौंध कर गति पकड़ती है, उत्कर्ष पर आकर दूसरे ही क्षण विलीन हो जाती है।"[34]

व्यंग्य में हास्य हो सकता है, किन्तु हास्य में व्यंग्य की अनिवार्यता नहीं है। जे.पी.श्रीवास्तव[35] ने व्यंग्य को विनोद से मिलता-जुलता बताया है फिर भी वे व्यंग्य को विनोद से पृथक् स्थान देना चाहते हैं।

डॉ. शेरजंग गर्ग हास्य और व्यंग्य के बारे में कहते हैं कि - "हास्य निष्प्रयोजन होता है और यदि उसका कोई प्रयोजन होता है तो वह निश्चय ही विशिष्ट नहीं होता जबकि व्यंग्य निष्प्रयोजन नहीं होता और उसका प्रयोजन वास्तव में गूढ़ और मार्मिक होता है।"[36]

बालेन्दु शेखर तिवारी के दृष्टिकोण से "हास्य का लक्ष्य शुद्ध रूप से मनोरंजन होता है। व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य है शोधन एवं आक्षेप द्वारा दोष सुधार एवं परिवर्तन। स्पष्ट ही हास्य का सम्बन्ध हृदय की उन्मुक्तता से है, जबकि व्यंग्य का नाता मस्तिक की कचोट से होता है।..... हास्य का जन्म असंगतियों के बीच आनंदवश होता है। उसकी कोई गंभीर वैचारिक पृष्ठभूमि नहीं होती। लेकिन व्यंग्य का जन्म परिवेशगत अन्तर्विरोधों के बीच आक्रोशवश होता है, हास्य के मूल में सुख की अनुभूति रहती है, जबकि व्यंग्य के मूल में कष्टानुभूति रहती है। और यह एक विद्रोही भाव है"[37]

रामनारायण उपाध्याय हास्य और व्यंग्य का अंतर स्पष्ट करते हुए कहते है कि - "जो अंतर एक सर्कस के जोकर तथा प्रखर प्रतिभाशाली बर्नाड शो में है। हँसी तो किसी के ठोकर लगकर गिर जाने से भी आ सकती है। लेकिन व्यंग्य का जन्म दर्द से होता है।"[38]

हास्य सुखात्मक भाव है जिसमें प्रेम, सहानुभूति और आनंद जैसे हृदयगत भाव होते हैं। व्यंग्य बुद्धिगत होता है जिसमें आक्रोश, विरोध जैसे उत्तेजक भावों की प्रमुखता होती हैं। हास्य और व्यंग्य में स्वरूपतः भिन्नता देखी जा सकती है।

उपहास (Sarcasm) और व्यंग्य

उपहास को पाश्चात्य साहित्य में 'सरकाज्म' या 'रिडीक्यूल' के रूप में व्याख्यायित किया है।

"व्यक्ति या वस्तु को क्रीड़ा, विनोद या मज़ाक करने के लक्ष्य को लेकर की

गई क्रिया या प्रयत्न, जो कि हास्योन्मुखी भाषा में उसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति उद्‌भूत होता है, उपहास है।"[39]

उपहास का अर्थ है, हँसी या मजाक उड़ाना। किसी को तुच्छ या हीन बताकार उसे लज्जित करना या उसकी हँसी उड़ानी। हसी-मजाक का भाव प्रधान होता है और तुच्छ या लज्जित करने का भाव गौण होता है।

उपहास का प्रहार प्रत्यक्ष रूप में होता है। एलेकजडर बेन के शब्दों में - "उपहास के शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक वही होता है, किन्तु एक तीव्र, कटु, ताना मारनेवाली तीक्ष्णता लिए हुए। यह शेष और क्रोध का औजार है, प्रहार करने का अस्त्र है।"[40]

उपहास और व्यंग्य का अंतर स्पष्ट करते हुए शेरजंग गर्ग लिखते हैं कि - "उपहास में व्यंग्य की भ्राँति आलोचना का भाव तो होता है, किन्तु उसमें मानवीय करूणा एवं सहानुभूति की वह अजस्त्र धारा प्रवाहित नहीं होती, जोकि व्यंग्य का प्राण होती है, व्यंग्य में यह आवश्यक है कि उसमें आलोचना के साथ-साथ कोई मानवीय अथवा व्यापक राजनीतिक, सामाजिक सन्दर्भ भी हो, उपहास में ऐसा अनिवार्य नहीं है।"[41]

डॉ. कहार के अनुसार - "...... उपहास व्यंग्य का उपकारक शास्त्र हो सहता है। .... इसमें व्यंग्य की भाँति गम्भीरता, तटस्थता एवं सूक्ष्मता जैसे गुणों की मात्रा अधिक नहीं रहती।"[42]

उपहास में आलोचना का भाव होता है, किन्तु मानवीय भावना प्रवाहित नहीं होती। व्यंग्य में आलोचना के भाव के साथ मानवीय भावना भी प्रवाहित होती है।

परिहास और व्यंग्य

हास्य की तरह परिहास में भी हँसी पैदा की जाती है। हँसी-मज़ाक इसके प्रमुख अंग है। परिहास का मुख्य प्रयोजन आनंद की प्राप्ति करना है।

परिहास द्वारा किसी की भी खिल्ली या कटाक्ष किया जाये तो उसका उपशमन प्रेमाश्रु द्वारा तुरन्त कर सकते हैं, किन्तु व्यंग्य में किसी के प्रति विरोध या आक्रोश प्रकट करे तो उसका शमन करना अनिवार्य नहीं हैं।

'सहानुभूति' और 'करूणा' को परिहास का आवश्यक गुण माना है। "सहानुभूति परिहास की जननी है तो धृणा व्यंग्य की जननी है।"[43]

वाक् वैदग्ध्य (Wit) और व्यंग्य

हिन्दी में 'विट' को कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे-वचन वैदग्ध्य, वाक् वैदग्ध्य, उक्ति चमत्कार, हाज़िर जवाबी, बुद्धि विलास, संचोटता, वाक्-चातुर्य आदि। शब्दों में विरोध अथवा व्यंग्यात्मक अर्थ होने के कारण 'Wit' को 'Contrastantithesis Irony' भी कहते है।

"शब्दों में विवेक की मितव्ययिता वैदग्ध्य को जन्म देती है। वचनों की विदग्धता के कारण जो उक्ति-चमत्कार होता है उसे 'विट' कहते है।"[44]

एडीशन ने Wit की परिभाषा देते हुए कहा है कि - "पदार्थों के जिस सम्बन्ध दर्शन से पाठकों में प्रसन्नता और आश्चर्य या चमत्कृत्ति उत्पन्न हो और उसमें भी विशेषत: चमत्कृति जान पड़े, उसे 'विट' कहते है'।[45]

'विट' का संबंध बौद्धिकता के साथ विनोदपूर्वक मनोरंजन से भी है। चमत्कारिक शब्द प्रयोग एवं वैचारिक अभिव्यक्ति 'विट' में अत्यन्त आवश्यक है। 'विट' में कथावस्तु के साथ-साथ भाषा प्रयोग एवं शैली कौशल भी अनिवार्य है। शब्दों का ताल मिलाते हुए आश्चर्य जनक कथ्य का सृजन करना ही 'विट' है।

वाक् वैदग्ध्य में "रस और चमत्कार" दोनों का होना आवश्यक है। श्लेष, समासोक्ति, व्याजोक्ति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों द्वारा अर्थ चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है।

कल्पना एवं बौद्धिकता के आधार पर साहित्यकार हास्य-व्यंग्य की सीमा में प्रवेश करके मार्मिक व्यंग्य प्रहार करता है। 'विट' में मनोरंजन हास्य के साथ, बौद्धिकत कल्पना, मानवीय करूणा, गंभीरता, संवेदना का सहज स्वाभाविक प्रयोग होता है।

शेरजंग गर्ग के अनुसार - "वाक् वैदग्ध्य और व्यंग्य में सबसे बड़ा अंतर यह है कि वाक् वैदग्ध्य स्वयं में व्यंग्य नहीं होता, उसमें व्यंग्य की संवेदना, करूणा, प्रहारक्षमता, गंभीरता तथा मार्मिकता द्वारा ही व्यंग्य की गरिमा उत्पन्न होती है।"[46]

'विट' अर्थ चमत्कार द्वारा विनोद उत्पन्न करने के लिए होता है, जबकि व्यंग्य समाज में निहित विसंगतियों पर प्रहार करने और सुधार के हेतु होता है।

वक्रोक्ति और व्यंग्य

जब किसी बात को टेढ़े-मेढ़े वाक्यों द्वारा प्रस्तुत की जाय तथा कहने की शैली अलग और उसका अर्थ दूसरा निकलता हो तो उसे वक्रोक्ति कहते है।

एलेकजेन्डर बेन ने वक्रोक्ति के संदर्भ में कहा है कि - "वक्रोक्ति में वक्ता के वास्तविक आशय को दर्शाने के लिए स्वर और शैली को कुछ ऐसे घुमाफिरा दिया जाता है कि उसका अर्थ कथ्य के पूर्णत: विपरीत हो जाता है।"[47]

"वक्रोक्ति बहुरूपिये की तरह होती है। फूल में शूल बनकर पहुचती है। मधुमक्खी की उपमा वक्रोक्ति पर सटीक बैठती है। नाम तो मधुमक्खी है पर दंश तीखा होता है।"[48]

"वक्रोक्तिकार भी धनुष की भाँती झूठि नम्रता में झुककर तीर की तरह चोट करता है इसमें स्तुति तथा निन्दा दोनों झूठी होती हैं। स्तुति, निन्दा तथा वक्रोक्ति में भेद ध्वनि का है, काकु का है। ध्वनि में ही अर्थ गूढ़ रहता है। वक्रोक्ति तथा सच्ची स्तुति या निन्दा में वही साम्य है जो कोयल और कौए में है। वक्रोक्ति का सच मानना विश्वासधात का आखेट बनना है।"[49]

अगर वक्रोक्ति में संवेदनशीलता और सहृदयता जैसे गुण मौजूद हो तो वह वक्रोक्ति व्यंग्य उत्पन्न कर सकती है। वक्रोक्ति में टेढ़ी बात कही जाती है जबकि व्यंग्य में सीधी बात कह कर आलोचना या प्रहार किया जाता है।

पैरोडी और व्यंग्य

'पैरोडी' अंग्रेजी शब्द है। हिन्दी साहित्य में इसी शब्द का प्रयोग हुआ है। "पैरोडी में किसी भी विशिष्ट शैली या लेखक की ऐसी हास्यपरक अनुकृति होती है कि वह गम्भीर भावों को परिहास में परिणित कर देती है।"[50]

Sir Arthur Quiller Covet ने पैरोडी का सम्बन्ध कविता और विशेषत: उच्च कविता से ही माना है।

Arthur Symons नामक विद्वान ने लिखा है कि - "Love and admire and respect the original, Admiration and laughter is the very essence of the act or art parody."[51]

(इसका आशय यह है कि मूल के प्रति प्रेम तथा आदर में कमी नहीं आनी चाहिए प्रशंसा तथा हास्य पैरोडी की जान हैं।)

पैरोडी के तीन प्रकार माने गये हैं। (1) शाब्दिक (2) आकार - प्रकार संबंधी (3) भावना संबंधी।

भारतेन्दु ने पैरोडी को 'आभास' की संज्ञा दी थी। परन्तु यह शब्द प्रचलित नहीं हुआ। हिन्दी साहित्य में 'पैरोडी' शब्द ही प्रचलित रहा है।

"पैरोडी हास्य युक्त व्यंग्य के साथ जुड़ी रहती है। इसका प्रयोजन क्योंकि हास्य की सृष्टि करते हुए विड़म्बनाओं को उभारना और मूलतः उन पर व्यंग्य करना होता है, इसलिए पैरोडी व्यंग्य की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन सकती है। जहाँ पैरोडी मात्र हास्य की सृष्टि करती है, वहाँ वह हास्य के निकट होती है और वहा उसे सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, विसंगतियों को उजागर करने के लिए काम में लाया जाता है, जहा व्यंग्य के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है।"[52]

पैरोडी पढ़ते समय मूल रचना की याद आना आवश्यक है। जिसे पता चले कि यह किस रचना की पैरोडी लिखी है। पैरोडी में हास्य युक्त व्यंग्य की सृष्टि होती है। इतना ही नहीं आज व्यंग्य साहित्य में 'पैरोडी' का शैली के रूप में प्रयोग हुआ है।

प्रहसन और व्यंग्य

प्रहसन को अंग्रेजी में 'कोमेडी'(Comedy) या फॉस (Farce) कहते है। मैरेडिथ ने कोमेडी के उद्भव में लिखा है – "Comedy, we have to admit was never one of the most honoured of the muess, she was in her origin, short of slaughter, the loudest expression of little civilization of man."[53]

अर्थात हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रहसन का कलाओं में कभी उच्च स्थान नहीं था। प्रारम्भ में ये हत्या से थोड़ी नीची वस्तु थी जिसमें अविकसित सभ्यता की प्रबल अभिव्यक्ति मिलती थी।

प्राचीन यूनानी प्रहसनों में देवताओं पर भी हास्य-व्यंग्य किया गया है। इतना ही नहीं एरिस्तोफेनिस के प्रहसन 'The Frog' में मेढक तथा अन्य जलचर प्राणियों के साथ मनुष्य के स्वभाव एवं आचरण की तुलना हास्य-व्यंग्यात्मक तरिके से की है। पाँचवी सदी के ग्रीक साहित्य में प्रहसनों मे धर्म और नीति का मज़ाक हास्यास्पद रूप में किया गया है।

भरतमुनी के अनुसार – "प्रहसन में सामान्य जनता में प्रचलित किसी दुराचरण एवं दंभ-पाखण्ड का प्रदर्शन अनिवार्य है।"[54]

'कोमेडी' व्यंग्य हो सकती है और व्यंग्य में भी प्रहसन के तत्त्व हो सकते हैं। किन्तु इनके बीच मुख्य अंतर है – प्रस्तुतीकरण का।

शेरजंग गर्ग के अनुसार – "प्रहसन नाटक का एक रूप है। जबकि व्यंग्य में नाटकीयता अनिवार्य नहीं है। व्यंग्य में चोट सीधी तथा प्रत्यक्ष भी हो सकती है

जबकि प्रहसन में असाधारण नम्रता द्वारा प्रहार किया जाता है, जिसके कारण आलम्बन मुस्करा सकता है।"[55]

प्रहसन का हास्य अवैयक्तिक और सार्वजनिक होता है तथा साथ में शिष्ट भी होता है। जबकि व्यंग्य का हास्य वैयक्तिक होता है, किन्तु किसी के मुँह अथवा पीठ पर घाव के समान होता है।

अतः उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि आज हास्य, परिहास, उपसहास, विट, वक्रोक्ति, प्रहसन आदि व्यंग्य के पर्याय न होकर किसी न किसी स्तर से अलग हो जाते हैं। फिर भी उनका व्यंग्य के संप्रेषण में किसी न किसी तरह का योगदान हो सकता हैं।

व्यंग्य के तत्त्व

मात्र हृदय के भावात्मक आक्रोश से नहीं बल्कि बुद्धि के आश्रय से व्यंग्य मार्मिक बन जाता है। व्यंग्य में निहित तत्त्वों की विविध व्यंग्य चिन्तकों ने चर्चा की है।

शेरजंग गर्ग के अनुसार - "व्यंग्य में निहित संवेदनशीलता, गम्भीरता, बैद्धिकता, सांकेतिकता एवं तटस्थ विश्लेषण ही व्यंग्य को सार्थक श्रेष्ठ तथा गहरा बनातें हैं।"[56]

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी ने व्यंग्य के चार मूल तत्वों की अनिवार्यता बताई है।

1) साहित्यिकता और साहित्य विधा
2) दूसरों की अथवा अपनी मूर्खताओं की हँसी उड़ाना
3) व्यंग्य की सृष्टि के लिए हास्य, वक्रोक्ति, वचन विदग्धता रूपी उपकरणों का प्रयोग।
4) सुधार करने का उद्देश्य।[57]

डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्तॉ ने व्यंग्य में तीन तत्त्वों की आवश्यकता बताई है। जैसे – (1) आलोचना (2) हास्य और बीभत्सता (3) सुधार [58]

डॉ. हरिशंकर दुबे ने व्यंग्य के विधायक तत्त्व निम्नांकित बताये है।

1) विसंगतियों का कथ्य
2) चरित्रांकन का वैशिष्ट्य
3) सत्यान्वेष परक दृष्टि
4) भिन्नताओं का मिश्रित भाव

5) भषागत - वैशिष्ट्य

6) 'फन्तासी'-प्रयोग

7) बुद्धिपक्ष का प्राधान्य

8) तटस्थ विश्लेषणात्मकता

9) संवेदना की पृष्ठभूमि

10) संक्षिप्तता एवं संहिति[59]

डॉ. सुरेश महेश्वरी ने 'यथार्थता, संवेदनशीलता, गम्भीरता, प्रौढ भाषा, बौद्धिकता, सांकेतिकता और तटस्थ विश्लेषण'[60] जैसे तत्त्वों की व्यंग्य में अनिवार्यता मानी है।

व्यंग्य में निहित तत्त्वों की अनिवार्यता को प्राय: सभी विवेचकों ने स्वीकार किया है।

1) यथार्थता

समाज एवं देश में व्याप्त विसंगतियों को यथार्थ के धरातल पर रखना ही व्यंग्य की श्रेष्ठता है। समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण ही व्यंग्य का अभीष्ट होता है। "व्यंग्यकार समाज का सब से जागरूक प्राणी एवं यथार्थ का कुशल चितेरा होता है।"[61]

व्यंग्यकार धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि स्तर की विसंगतियों का कुशलता पूर्वक चित्रण करता है। समाज में व्याप्त अन्याय, दुराचार, अभिचार, कुसंस्कारों को नष्ट करने के लिए जो तीव्र व्यंग्य प्रहार करता है, वह समाजोपदेशक होता है।

व्यंग्य, युग की वास्तविक परिस्थितियों को दर्शाता आईना है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक जितना भी व्यंग्य साहित्य लिखा गया, उसमें अपने-अपने युग की विडम्बनाओं एवं विसंगतियों का चित्रण पाया जा सकता हैं। जैसे- भक्तिकाल के साहित्य में पाखंड़ी एवं ढ़ोंगी लोगों के प्रति धार्मिक स्तर पर व्यंग्य मिलता है। भारतेन्दु युग में विदेशी शासन, विदेशी नीति, भ्रष्टाचार आदि पर राजनैतिक व्यंग्य अधिक मिलता है। इसी तरह स्वातंत्र्योत्तर युग में देश में व्यप्त भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, नेताओं की बेईमानी, सूदखोरी आदि पर व्यंग्य लिखा गया है। राजनीतिक पृष्ठभूमि पर किया गया व्यंग्य उस समय की यर्थाय परिस्थिति को चित्रित करता है।

व्यंग्य के माध्यम से जिस यर्थाय परिस्थिति का चित्रण होता है उसमें आक्रोश और प्रहारात्मकता अधिक दिखाई देती हैं।

2) संवेदनशीलता

व्यंग्यकार सामान्य मनुष्य की तरह सुख और दु:ख जैसे भावों का अनुभव करता है। इसकी यह संवेदना ही उसे व्यंग्य करने को विवश करती है। इसलिए व्यंग्य में निहित संवेदनशीलता व्यंग्यकार की वाचा बन पडती है। मानवीय संवेदना ही एक दूसरों के सुख-दु:ख समझने की प्रेरणा बनती है। जीवन के प्रति जो निराश पैदा होती है उसका शमन व्यंग्यकार अपनी लेखनी के अनुचित क्रिया-कलापों द्वारा प्रहारात्मक रूप से करता है और आनंद तथा हर्ष की तृप्ति कराता है।

व्यंग्यकार केवल अपने ही सुख-दु:ख की अनुभूति का ज्ञान नहीं कराता बल्कि सारे समाज एवं मानव मात्र की संवेदनाओं को अपने व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करता है। व्यंग्यकार की यह अनुभूति जिदगी के सुख और दु:ख के पहलुओं को समझाने पर विवश करती हैं।

हरिशंकर परसाई ने देश, समाज, सरकार और प्रजा में फैले झूठे संतोष को अपनी संवेदना में व्यक्त करते हुए कहा है कि - "जो कौम भूखी मारी जाने पर सिनेमा में जाकर बैठ जाए, वह अपने दिन कैसे बदलेगी। अद्‌भुत सहनशीलता इस देश के आदमी में। और बड़ी भयावह तटस्थता कोई उसे पीटकर उसके पैसे छीन ले तो वह दान का मंत्र पढ़ने लगता है।"[62]

यह सच है कि व्यंग्यकार की संवेदनशीलता ही उसे व्यंग्य करने को प्रेरित करती है।

3) गंभीरता

व्यंग्य में निहित गंभीरता उसे एक सम्मानकारक साहित्य बना सकती है। व्यंग्य में यदि गंभीरता न आये तो वह हलका बन जायेगा। हाँ, व्यंग्य एक ऐसी शैली बन सकता है जिसमें गंभीर विषयों को भी हलके-फूलके मनोरंजक रूप में ढाल सके। पर इसमें यह आवश्यक है कि व्यंग्य में निहित गंभीरता के कथ्य पर प्रहार न हो।

"यदि व्यंग्य में किसी प्रकार की अगंभीरता परिलक्षित हो, तो भी उसे अगंभीर समझने की जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। इसका सीधा सा कारण यही है

कि व्यंग्य स्वयं अगंभीरता, छिछरेपन, सतही मानसिकता और असंगतियों पर प्रहार करता है।"[63]

अज्ञेय ने 'गंभीर बातों को हलके ढ़ंग से कहना' भी एक व्यंग्य की शैली हो सकती है ऐसा कहा है।

हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्य लेखन को विनोदवृत्ति न समझकर एक गंभीर चीज़ बताई है। "अपनी कैफियत हूँ तो यह हँसना और हँसाना, विनोद करना अच्छी बातें होते हुए भी मैंने केवल मनोरंजन के लिए कभी नहीं लिखा। मेरी रचनाएँ पढ़ कर हँसी आ जाना प्रासंगिक है, मेरा व्यंग्य को उपहास, मखौल न मान कर गंभीर चीज मानता हू।"[64]

व्यंग्य में छिपी गंभीरिता उसे निरर्थक और हलका बनाने से रोकती है। ऐसा साहित्य मूल्यवान और सार्थक बन सकता है।

4) बौद्धिकता

व्यंग्य में भाव या कल्पना की अपेक्षा बुद्धि का ज्यादा प्राधान्य रहता है। व्यंग्य, हास्य मिश्रित बौद्धिक प्रति-क्रिया है जिसमें बुद्धि तत्व के आधार पर यथार्थ और आदर्श को प्रस्तुत किया जाता है। अरस्तू ने बुद्धि को आत्मा की सर्वोच्च शक्ति माना है।

डॉ. श्यामसुन्दर घोष ने व्यंग्य को बुद्धि की परिपक्वता का लक्षण माना है और कहा है कि – "व्यंग्य कोई भावुकता मूलक कर्म नहीं है। वह तो परिपक्वता का लक्षण है। जब हम बहुत दीन-दुनिया देख लेते हैं, दर-दर की ठोकरें खा लेते हैं, देखने सुनने और भोगने के बाद काफी चिन्तन कर चुकते हैं तब हममें व्यंग्य का बोधिसत्व उदित होता हैं।"[65]

हरिशंकर दुबे के अनुसार – "व्यंग्यकार की सोच बैद्धिक होती है और प्रस्तुति सजीव।"[66] दुबेजी ने व्यंग्य में बुद्धि का जितना महत्त्व बताया हैं उतना ही हृदय की भावनाओं (संवेदनाओं) का महत्त्व माना हैं।

बैद्धिकता के अभाव से व्यंग्य में तार्किकता और वैज्ञानिकता आती है। "बौद्धिकता से सोच की क्षमता का विकास होता है साथ ही रोचकता भी आती है। और बुद्धि के साथ की रोचकता ही बुद्धि रस है।"[67] अतः बौद्धिकता से व्यंग्य सजीव हो उठता है।

5) सामासिकता

'सामासिकता' को 'सांकेतिकता' का नाम भी दिया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली' कहा है। डॉ. नामावर सिंह इसे 'संक्षेप' अथवा 'शाब्दिक' मितव्ययिता' संज्ञा घोषित करते हैं।

सांकेतिकता अभिधा के सीधे और सरल शब्दों द्वारा अत्यन्त गहरे अर्थ को व्यंजित करनेवाली शैली है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक विचारों को प्रकट करना ही व्यंग्य की लाक्षणिकता मानी जाती है। सामासिकता का अर्थ है - 'गागर में सागर भर देना'! बिहारी का यह दोहा इसका प्रमाण है -

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौ बिंध्यौ, आगै कौन हवाल।।'

व्यंग्य की सामासिकता उसकी गंभीरता और बैद्धिकता का प्रमाण होती है। थोडे ही शब्दों में गूढ़ अर्थों को व्यक्त करना व्यंग्य में निहित सांकेतिकता हैं। व्यंग्य निबंध या लघु व्यंग्य में व्यंग्यकार समास शैली का प्रयोग करता है, जिसमें कम से कम शब्दों में अपनी बात अभिव्यंजित कर सके।

गुडमैन के अनुसार - "प्रभावकारी व्यंग्य वीर के समान होना चाहिए जो कि कम से कम समय में लक्ष्य को भेद दें। थोड़े में बहुत कुछ कह देना ही व्यंग्य का गुण है। विस्तार इसके प्रभाव को नष्ट कर देता है।"[68]

6) तटस्थ विश्लेषण

किसी के प्रति पूर्वाग्रह न रख कर बात को पूरी तरह समझकर उसके अंगों तथा तथ्यों का निरीक्षण करना ही तटस्थ विश्लेषण है। किसी पक्ष-विपक्ष की आड़ में छिप कर व्यंग्य करना लाजमी नहीं है। बल्कि इसे परे रह कर अपनी लेखनी के माध्यम से आलोचना करना ही तटस्थता कहलाती है। "व्यंग्य में निहित तटस्थ विश्लेषण जहाँ मनुष्य को स्वयं से परे सोचने पर विवश करता है, वहाँ उसके लिए अपनी ही विडम्बनाओं और कमियों को उभारने में भी सहायक होता है। तटस्थ विश्लेषण के अभाव में आत्मा विडम्बना की निर्मम अभिव्यक्ति संभव ही नहीं है और सत्य एवं कथ्य में मिलावट तथा कुत्रिमता को जन्म देती है।"[69]

बौद्धिकता से ही तटस्थ विश्लेषण करने की क्षमता आती है। तटस्थता के अभाव में लिखा गया साहित्य द्वेष युक्त होता है। वह कभी भी अर्थवान नहीं बन पाता। इसीलिए व्यंग्य में निहित तटस्थता साहित्य को सच्चा और सारवान

बनाती है।

7) भाषा–शैली

व्यंग्यकार अपने विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है और शैली के द्वारा उसका स्वरूप निर्धारित होता है। भाषा और शैली अभिव्यक्ति के प्रमुख तत्त्व है।

व्यंग्य की भाषा-शैली साहित्य की अन्य विधा से अधिक परिपक्व और पैनी होती है। बालेन्दुशेखर तिवारी ने व्यंग्य में अलंकृत भाषा-शैली की आवश्यकता बताई है। वे कहते है कि "व्यंग्यभाषा छींटाकशी और कटारी चोट के धरातल से उठती हुई परिवर्तनकामी अभिव्यंजकता है। सामाजिक-राजनीतिक विड़म्बनाओं, परिवेशगत विसंगतियों और जीवन की अर्थहीनताओं को सही पकड़ के साथ सम्प्रेषित करने वाली शब्दार्थ योजना व्यंग्यभाषा बनकर सामने आती है। अपने अनुभवों और अनुमानों के सम्प्रेषण के लिए जिन शैलीय उपकरणों का संगठन व्यंग्यकार करता है, वे उपकरण भाषा के रूप-अर्थ-ध्वनिविधायक सामान्य उपादान ही है।"[70]

व्यंग्य में निहित भाषा-शैली मनुष्य के स्वरूप, वेशभूषा, सौन्दर्य को ज्ञात कराती है। श्लेष, रूपक, कथोपकथन, वाग् वैदग्ध्य, मानवीयकरण जैसे व्यवहारिक उपकरण व्यंग्य को चमत्कारिक और प्राणवान बनाते है। व्यंग्य में निहित भाषा-शैली व्यंग्यकार के व्यक्तित्त्व की पहचान है।

व्यंग्य में निहित यर्थाथता, संवेदनशीलता, गंभीरता, बौद्धिकता, सांकेतिकता, तटस्थता एवं भाषा-शैली जैसे तत्त्व, उसकी आवश्यकता पूर्ति के साधन है। व्यंग्य के इन तत्त्वों के समन्वय से व्यंग्य भावात्मक, प्रहारात्मक और कलात्मक स्वरूप प्राप्त करके आदर्श के धरातल पर प्रतिष्ठित हो सकता है।

व्यंग्य का उद्देश्य एवं प्रयोजन

व्यंग्य का उद्देश्य समाज में छिपे दुराचारों को सुधार करना ही है। व्यंग्यकार अपने प्रहारात्मक व्यंग्य बाणों से समाज में प्रवृत भ्रष्यचार, अत्याचार एवं दुष्परिणामों को व्यंजित करता है। व्यंग्यकार की इस प्रकार की रचना समाज उपदेशक होती है। हम्बर्ट वोल्फ का कहना है कि – "व्यंग्यकार का स्थान उपदेशक तथा हाज़िर जवाब के बीच का होता है। उद्देश्य दोनों का एक ही है किन्तु

उसके प्रस्तुतीकरण का ढंग अलग-अलग है...... व्यंग्यकार उपदेशक की भाँति केवल सत्य की प्रतिष्ठा पर ही बल नहीं देता है अपितु वाग्वैदग्ध्य के द्वारा पाप का भांड़ां फोड़ करता है।"[71]

उपदेश संबंधी भाषणों में अनाचार, दुराचार, अत्याचार आदि कार्यों की टीका की जाती हैं। उसे धिक्कारा जाता है, उसकी निन्दा की जाती हैं। समाज सुधारकों, धर्माचार्यों, पादरियों आदि अपने उपदेशक प्रवचनों में कुव्यवस्था, कुरीतिनीति तथा दुष्टों के प्रति प्रत्याघात करते हुए कुकर्मों का पर्दाफाश करके मानवीय दुर्बलताओं को उजागर करते है। व्यंग्यकार उसी ढ़ाचे पर साहित्यिक रूप से चोट करता है। जिनमें समाज एवं मनुष्य की नैतिक एवं मानसिक शोधन की भावना निहित रहती है। उदाहरण हेतु हम पंचतंत्र की कथाओं को ले सकते हैं। पंचतंत्र की कथाओं में अनाचार, दुराचार एवं अन्याय का खंड़न बड़े ही व्यंग्यात्मक शब्दों में मिलता हैं। जो विशुद्ध अर्थ में उपदेशात्मक रूप में लिया जा सकता है।

उपदेशक प्रत्यक्ष रूप से "व्यख्यात्मक शैली से श्रोताओं का हृदय परिवर्तन करता है, जबकि व्यंग्यकार परोक्ष रूप से संकेतात्मक शैली में व्यंग्यात्मक प्रहार करके वाचक के हृदय को अपनी बात मनवाने के लिए विवश कर देता है।

व्यंग्य क्रांति का अग्रदूत होता है। व्यंग्य विध्वंस का नहीं बल्कि हँसते-हँसते विध्वंस को रोकता है। हरिशंकर परसाई सुधार के लिए नहीं बल्कि समाज की विसंगतियों में बदलाव लाने के लिए व्यंग्य लिखते है। फिर भी व्यंग्य से सुधार होता है, इस बात को परसाई स्वीकार करते है।

वीरेन्द्र मेहदीर्त्ताँ के अनुसार - "व्यंग्यकार को अपने उद्देश्य में तभी सफल हो जाता है जब वह अपने लक्ष्य की बौद्धिक और मानसिक गन्दगी की सफाई कर उसे नई दिशा की और मोड़ दे।"[72]

व्यंग्य का उद्देश्य नैतिक उत्थान का होना चाहिए। व्यंग्य समाज का ऐसा आइना है जो समाज की कुरूपता को दूर करने में मदद करता है। भारतेन्दु युग से ही हमें सोदेश्यपूर्ण व्यंग्य साहित्य प्राप्त हुआ है। इस युग में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक व्यंग्य हुआ है। जो समाज एवं देश के लिए सुधारक बना है। स्वातंत्र्योत्तर युग में जो व्यंग्य लिखा गया वह दूसरों पर कटाक्ष करना, मनुष्य की विकृतियों को बदलना तथा अव्यवस्थित समाज में परिवर्तन लाना था। आज भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए, व्यंग्यकार वैयक्तिक एवं वस्तुपरक व्यंग्य करने से नहीं चूकता।

डॉ. तिवारी कहते हैं कि - "व्यंग्य एक चुभता कांटा है जो वाणी लेखनी के माध्यम से उत्पन्न होता है। परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए व्यंग्य उपयोगी आयुध का काम करता है। इसकी प्रयोजन शीलता ही हास्य से पृथक करती है और अपनी इसी सोद्देश्यता के कारण व्यंग्य दुर्गुणों का शत्रु बनता हैं।"[73]

डॉ. उषा शर्मा लिखती है कि - "व्यंग्यकार नैतिकता का पूजारी है। वह विसंगतियों के पीछे हाथ धोकर पड़ा रहता है और उन्हें सुधारना या बदलना ही उसका प्रमुख लक्ष्य होता है।"[74]

कई साहित्यकार अपनी रचनाओं में विसंगतियों का चित्रण करते है, तो कोई भारतीय समाज एवं संस्कृति की रक्षा करने के उद्देश्य से व्यंग्य लिखते हैं। कभी-कभी पाठक की जिज्ञासा तथा आनंद की तृप्ति के लिए व्यंग्यकार व्यंग्य लिखता है। तो कभी ज्ञान प्राप्ति एवं अमंगल का नाश करने के उद्देश्य से व्यंग्य लिखता है। अपने साहित्यिक गुणों को उजागर करके, विशिष्ट भाषा-शैली के द्वारा व्यंग्यकार व्यंग्य का कलात्मक चित्रण प्रस्तुत करता है, जो पाठक के लिए मनोरंजक तो होता ही है, साथ में कान्तासम्मित उपदेशक भी होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि जिस तरह उपदेशक अपने प्रवचन में सीधे सरल शब्दों से उद्देश्य को स्पष्ट करता है, उसी तरह व्यंग्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से व्यंग्य में अपने उद्देश्य को अभिव्यंजित करता है।

व्यंग्य के प्रकार

पश्चिम विद्वानों ने व्यंग्य के हास्य के प्रभेद के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु आज व्यंग्य हास्य का एक मात्र प्रभेद न रहकर साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में सामने आया है। कई व्यंग्य विवेचकों ने व्यंग्य के विविध प्रकारों की चर्चा की है।

डॉ. शेरजंग गर्ग ने प्रेरणा और प्रभाव के आधार पर व्यंग्य का वर्गीकरण किया है। "प्रेरणा के आधार पर व्यंग्य को दो रूपों, यथा-वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक में विभक्त किया है। वैयक्तिक रूप को दो तरह से देखा है। यथा-आत्म व्यंग्य और परस्थ व्यंग्य। इसी तरह निर्वैयक्तिक व्यंग्य को दो प्रकारों से विभक्त किया है। यथा - (1) राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थितियों पर अथवा इन परिस्थितियों की विडम्बनाओं को उभारनेवाला

व्यंग्य, और (2) दैवी एवं नियति की दारूणता को दर्शाने वाला व्यंग्य।

प्रभाव के आधार पर व्यंग्य के तीन प्रकारों को विभक्त किया है। यथा (1) हास्य से युक्त व्यंग्य (2) कटु यर्थाथ से युक्त व्यंग्य (3) करूण व्यंग्य।"[75]

डॉ. गर्ग का वर्गीकरण विषय तथा शैली के आधार पर भी किया गया है। इस वर्गीकरण में व्यंग्य के प्रत्येक पहेलू को विभाजित किया गया है।

डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी ने आश्रय के आधार पर व्यंग्य का वर्गीकरण किया है। यथा - (1) व्यक्तिगत व्यंग्य और (2) समष्टिगत व्यंग्य। समष्टिगत व्यंग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है - (1) धर्म-सम्बन्धित, (2) समाज-सम्बन्धित, (3) साहित्य-सम्बन्धित, (4) राजनीति-सम्बन्धित (5) मानवीय दुर्बलताओं से सम्बन्धित।"[76]

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी ने व्यंग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। यथा - (1) चमत्कारीक विनोद वचन (Wit) (2) व्याजोक्ति (Irony) (3) उपहास (Sarcasm) (4) व्याकृति (Buslesque) (5) आक्षेप (Compoon)

डॉ. तिवारी ने जो वर्गीकरण किया है वह "आलम्बन के आधार पर न होकर व्यंग्य की चारित्रिक भंगिमा के आधार पर"[77] किया है। इसके अतिरिक्त भर्त्सना (Invective), छिद्रान्वेषण (Cynicism), विद्रुप (Contrast) जैसे अन्य और भी स्वीकार किए गए हैं। डॉ. तिवारी ने पश्चिमी विचारकों के आधार पर ही अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

डॉ. वीरेन्द्र मेंहरीर्त्ताँ[78] ने व्यंग्य के भेद, उसके साधन व तत्व के आधार पर किये हैं। उन्होंने साधन के रूप में (1) उपहास (Sarcasm) (2) विडम्बना (Irony (3) अपकर्ष (Dimination) (4) अतिशयता (Exaggeration) (5) वैदग्ध्य (Wit) की चर्चा करते हुए, उसी के आधार उपहासात्मक व्यंग्य, विडम्बनात्मक व्यंग्य, अपकर्षात्मक व्यंग्य, वैदग्ध्यात्मक व्यंग्य और अतिशयात्मक व्यंग्य जैसे व्यंग्य के पाँच प्रभेद माने हैं।

डॉ. भगवानदास कहार ने व्यंग्य की शैली इवं प्रभाव के आधार पर व्यंग्य का वर्गीकरण किया है। यथा (1) हास्यात्मक व्यंग्य (2) प्रहारात्मक व्यंग्य (3) करूण या आत्मीयतापूर्ण व्यंग्य (4) विद्वेष या आक्षेप मूलक व्यंग्य[79]

व्यंग्य की शैली एवं विषय के आधार पर इसका वर्गीकरण निम्नांकित रूप से किया जा सकता है।

1) वैयक्तिक व्यंग्य

(i) आत्म व्यंग्य (2) परस्थ व्यंग्य

2) समष्टिगत व्यंग्य

(i) राजनीतिक (ii) धार्मिक (iii) सामाजिक (iv) सांस्कृतिक (v) साहित्यिक (vi) आर्थिक-व्यंग्य

3) हास्य युक्त व्यंग्य

4) करूण व्यंग्य

5) कटु यर्थाय से युक्त व्यंग्य

7) प्रहारात्मक व्यंग्य

1) वैयक्तिक व्यंग्य

किसी व्यक्ति विशेष को संबोधित करके लिखा हुआ व्यंग्य वैयक्तिक व्यंग्य कहा जाता है। इसमें व्यक्ति विशेष दोषों एवं कमियों पर व्यंग्यात्मक आलोचना की जाती है। वैयक्तिक व्यंग्य को दो रूपों में विभाजित किया जाता हैं। यथा - (i) आत्मस्थ व्यंग्य, (ii) परस्थ व्यंग्य

(i) आत्मस्थ व्यंग्य

आत्मस्थ व्यंग्य में व्यंग्यकार खुद पर ही व्यंग्य करता है। इसमें रचनाकार व्यंग्य के माध्यम से अपनी पीड़ाओं और आक्रोश को अपने ही ऊपर हँसी-खुशी आरोपित करता है। स्वयं पर व्यंग्य करना कठिन कार्य है। जैसे - रोशनलाल सुरीरवाला ने अपनी ही शक्ल पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि "इस शक्ल के लिए हमें लाखों के बोल सहने पड़े हैं। एक बार हम नाई की दुकान पर जा बैठे। तहमद बनियान पहने थे। नाई नहीं था। उसी समय एक महाशय आये और हुकम दिया - शेव बनाओ, जल्दी।"[80]

ii) परस्थ व्यंग्य

परस्थ व्यंग्य में दूसरें व्यक्तियों पर व्यंग्य किया जाता हैं। व्यंग्यकार जिस किसी व्यक्ति की आलोचना करना चाहे, उस पर सीधा प्रहार करता है। यह व्यंग्य आक्रमक होता है। इस प्रकार के व्यंग्य लिखने के लिए सत्यप्रियता और नैतिक साहस की आवश्यकता होती है। निराला और नागार्जुन जैसे

कवियों ने इस प्रकार का व्यंग्य लिखा है।

परस्थ व्यंग्य में डाक्टर, इंजीनियर, वकील, वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी, खुसामदखोर, नेता, अभिनेता, मंत्री आदि पर व्यंग्य किया जा सकता है।

2) समष्टिगत व्यंग्य

समष्टिगत व्यंग्य के रूप विषय तथा परिस्थिति के आधार पर विभाजित किये गयें हैं। जिसमें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया जाता है। इस प्रकार के व्यंग्य में किसी व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य न करके, संपूर्ण परिवेश पर व्यंग्य किया जाता है।

i) राजनीतिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में देश की शासन व्यवस्था, संसद एवं विधान सभा भवन में हो रहे उतार-चढ़ाव, चुनाव प्रक्रिया, विपक्षी दल का कार्य आदि राजनैतिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य प्रहार किया जाता है। अमृत राय ने मंत्रिओं की दल बदल की प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है कि - "उधर के कितने लोग टूट कर उधर आ मिले, कितने ए.मेले और कितने जो अभी वहाँ दूर जड़ाते बैठे एआइसीसी पीसीसी ही कर रहे है।"[81]

ii) प्रशासनिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में राजनीति का प्रभाव देखने को मिलता है। सरकारी अधिकारी, सरकारी कार्यालय, पुलिस-तंत्र, रेल एवं बस सुविधा, सरकारी अस्पताल आदि से जुड़े तथा इसकी कार्य-व्यवस्था की त्रुटि पर आलोचनात्मक व्यंग्य किया जाता है। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने सरकारी कार्यालयों में अफसर की लापरवाही तथा उनके ऊँचे वेतन पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि - "फाइल पढ़ें या न पढ़े, तनख्याह फिर भी मिलेगी। इंक्रीमेंट भी मिलेगा और प्रमोशन भी होगा। देश के हजारों सरकारी अफसरों के साथ यही स्थिति है।"[82]

iii) सामाजिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में समाज एवं देश में व्याप्त विसंगतियों, विषमताओं

तथा विडम्बनाओं का प्रहारात्मक चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। यह व्यंग्य समाज-सुधार की भावना को लक्ष्य में रख कर लिखा जाता है।

हमारे समाज में दहेज जैसी खोखली और खतरनाक प्रथा है। इस व्याभिचारी प्रवृत्ति पर हरिशंकर परसाई ने व्यंग करते हुए लिखा है कि - "नाबालिग लडकियाँ पेट भरने को चकलों में बैठ जाती हैं दहेज के कारण लडकियाँ बिनब्याही सूख जाती हैं। हर तरफ लूट-खसोट है। साधारण आदमी का कई तरफ से खून चूसा जा रहा है और कोई बचाव का रास्ता नज़र नहीं आता।"[83]

iv) धार्मिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में हिंदू-मुस्लिम, हिंदू-इसाई के प्रांतिय झगड़े, धर्म के नाम हो रहे पाखंड, जातिवाद, भेदभाव, छूआ-छूत, मूर्ति-पूजा, बलि-प्रथा आदि धार्मिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया जाता है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के विषय पर काफी व्यंग्य साहित्य मिलता है।

नरेन्द्र कोहली ने धर्म के नाम पर अनुचित फायदा उठानेवालें तथा एक से अधिक पत्नी रखनेवालें जायज धर्म पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि - "धर्म के नाम पर लोगों को नंगे रहने, सशहस्त्र रहने और एक से अधिक पत्नियाँ रखने का अधिकार था। धर्म तो इस देश में 'वीटो' है। उसके सामने न कोई तर्क चलता है, न नियम कानून।"[84]

v) साहित्यिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य साहित्यिक प्रवृत्ति, साहित्यिक रचना, लेखक या कवि के संबंधित किये जाते है। कवियों द्वारा पैसे लेने की लालची प्रवृत्ति पर श्रीराम ठाकुर 'दादा' ने 'काश मैं मर गया होता' व्यंग्य में लिखा है कि - "कवियों की आजकल पशुओं जैसी नीलामी होने लगी जिसने रकम बढ़ायी उसके साथ तैयार।"[85]

vi) सांस्कृतिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में सांस्कृति के पिछड़ेपन तथा उसके पतन पर करारा व्यंग्य किया जाता है। पश्चिमी रहन-सहन, पश्चिमी खाना, पश्चिमी पहनावा तथा

पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने की वृत्ति के कारण भारतीय संस्कृति में जो परिवर्तन आया है, उस विषय पर व्यंग्यकारों ने व्यंग्य कियें हैं।

श्रीलाल शुक्ल ने 'भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिक पृष्ठ' निबंध में आधुनिक भारतीय संस्कृति पर कस कर व्यंग्य प्रहार किया है। "इंडिया में अभी तो जैसे बैलगाड़ी के लेवल से ऊपर नहीं उठे, वैसे ही फूलों के मामलें में गेंदे से ऊपर नहीं उभर पाये। गाड़ियों में बैलगाड़ी, मिठाईयों में पेड़ा, फूलों में गेंदा, लीजिए जनाब वही है अपनी इंडियान कलचर।"[86]

vii) शैक्षणिक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में शिक्षक, प्राध्यापक, शिक्षा-संस्थान, शिक्षण व्यवस्था में चल रही गैर रीति, डोनेशन-प्रथा, पैसे देकर डिग्रियाँ खरीदने की वृत्ति आदि शिक्षण जगत से संबंधित विषयों पर व्यंग्य किया जाता है। शिक्षण क्षेत्र में चलनेवाले अन्याय, अत्याचार तथा भ्रष्टाचार युक्त व्यवस्थापन पर हरिशंकर परसाई ने करारा व्यंग्य प्रहार किया है। यथा - "आदिवासी छात्र जो सरकार के स्कालरशिप पाकर मजे में होस्टेल में रहकर पढ़ता है, रोज सबेरे प्रार्थना के बाद प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री और आदिवासी मंत्री की जय बोलता है। पर जब वे लड़के अलग बेठते हैं, तब कहते हैं कि - साले घटिया खाना खिला रहे हैं।"[87]

3) हास्य युक्त व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में व्यंग्य की कटुता एवं तिक्तता कम होती है। इसमें कथ्य हास्य के आवरण में लपेटा हुआ होता है। व्यंग्य प्रहार कटु न होकर मधुर लगता है। फिर भी इसमें प्रयोजनीयता रहती है। हास्य युक्त व्यंग्य भारतेन्दु काल के निबंधों में अधिक मिलता है। निराला की "कुकुरमुत्ता" कविता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

4) करूण व्यंग्य

करूण व्यंग्य में जीवन की दयनीय, विवश और असहाय परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण होता है। इसमें करूणा एवं वेदना को आत्मीयता पूर्ण चित्रित किया जाता है। मनुष्य जीवन की दारूण और विषम परिस्थिति को परिष्कृत

किया जाता है। इस प्रकार के व्यंग्य में मानवीय संवेदनाओं का चित्रण देखने को मिलता है। इस प्रकार के व्यंग्य के लिए सुमित्रानन्दन पंत की कविताएँ उल्लेखनीय है। "वे आँखे" कविता में बैबश किसान की आँखो का करूण चित्रण देखने मिलता है। यथा -

"आँखों में घूमा करता
वह उसकी आँखो का तारा
बिका दिया घर द्वार महाजन ने
न व्याज की कौड़ी-छोड़ी
रह-रह आँखों में चूभती
वह कुर्क हुई नरधों की जोड़ी"[84]

5) कटु यथार्थ से युक्त व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में सत्य की झलक देखने को मिलती है। इसमें व्यंग्य हलका-फूलका न होकर अधिक तिक्ष्ण होता है। इसमें आक्रोश, धृणा, तिरस्कार की भावना अधिक होती हैं। निराला ने अपनी "सरोज-स्मृति" काव्य में कान्य-कुब्ज ब्राह्मणो की वृत्ति पर कटु यथार्थ से युक्त व्यंग्य किया है।

6) प्रहारात्मक व्यंग्य

इस प्रकार के व्यंग्य में प्रहार, आक्षेप, धृणा, विरोध आदि का भाव मुख्य होता है। वक्रोक्ति, व्याजस्तुति, अन्योक्ति, काकु, श्लेष जैसे कला विधान द्वारा प्रहारात्मक व्यंग्य किया जाता है। कबीर, केशव, नागार्जुन, निराला, अज्ञेय आदि विद्वानों की रचनाओं में इस प्रकार का व्यंग्य अधिक मिलता है।

शैली वैज्ञानिक चिंतन

'शैली' का स्वरूप विवेचन

'शैली' साहित्यिक भाषा का वह तत्त्व है जिसमें साहित्यकार का व्यक्तित्त्व उभर आता है। साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, चित्र आदि कलाओं में भी 'शैली' शब्द प्रचलित है। इतना ही नहीं व्यवहार और आचरण में भी हम 'शैली' शब्द का प्रयोग करते हैं, साहित्य में लेखक या कवि की अभिव्यक्ति को 'शैली' की संज्ञा दी गई है।

हिन्दी में आज जो "शैली" शब्द है वह भारतीय वाड्मय का शब्द है। "शैली" शब्द का प्रथम प्रयोग कुल्लूभट (सन् 1150-1300 ई के लगभग) कृत टीका मनुस्मृति (14) में मिलता है। प्रयोग यह है – "प्रयोग आचार्यणामियं शैली यत् सामान्येनाभिधाय विशेषेण विवृणोति।"[89] यहाँ शैली का अर्थ "व्यख्यान पद्धति या प्रणाली लिया गया है।

"शैली" की व्यत्त्पति, 'शील' धातु ते मानी गयी है। जिससे 'शील', 'शालीन', 'शालिनी' व्युत्पन्न हुए। 'शैलीन' शब्द की व्युत्पत्ति भी 'शील' धातु से बताई जाती है। मध्यंदिन संहिता (30-40) में "शील" देवता विशेष हैं। जिसका मंध्य आंजनी विद्या है। इस विद्या में 'लीपना' 'आँजना' तथा 'पालिश' करना आदि के अर्थ में 'शील' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'शील' शब्द को 'शैली' के काफी निकट ला देता है। पाणिनी ने 'धातु पाठ' में प्राप्त 'शील' धातु से भी इसका संबंध जोड़ा है।

आज 'शैली' शब्द अंग्रेजी के 'स्टाइल' (style) के अर्थ में प्रचलित हुआ है। 'स्टाइल' शब्द काफी पुराना है। 'लेटिन' शब्द 'स्ताइलुस' का प्राचीनतम प्रयोग पत्थर, हड्डी या धातु से बनी उस कलम के लिए मिलता है जिससे चोम चढी टिक्कियों पर लिखते थे। विभिन्न प्रकार के लेखन के लिए विभिन्न प्रकार के 'स्ताइलस' की आवश्यकता पड़ती थी। इसी कारण इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन के बीज पड़े। तत् पश्चात 'भाषिक अभिव्यक्ति' ढ़ंग के लिए यह प्रयुक्त हुआ।

अवेस्ता में 'स्तएर' (Staera-पर्वतशीर्ष) ग्रीक में 'स्ताइलोस' (Stylos-स्तंभ) लैटिन में स्ताइलुस (Stilus) आदि में Style शब्द प्रचलित है। अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी आदि यूरोपीय भाषाओं में वह लेटिन शब्द स्टाइल, स्ताइल, स्तील आदि विभिन्न रूपों में 'शैली' के लिए प्रयुक्त होता है।

भारतीय काव्यशास्त्र में 'शैली' के पर्यायवाची रूप में 'रीति' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'रीति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य वामन ने काव्यालंकार सूत्र में 'विशिष्ट पदरचना रीति' (विशिष्ट पदरचना में रस, अलंकार, ध्वनि, लक्षणा, व्यंजना, शब्द चयन, आदि आ जाते हैं।) कह कर किया। काव्यादर्शन में दंडी ने 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया। 'मार्ग' शब्द 'रीति' से अधिक प्राचीन है। किन्तु यह शब्द अधिक प्रसिद्ध नहीं हुआ। आचार्य वामन ने 'रीति' को काव्य की आत्मा (रीतिरात्मा काव्यस्य) कह कर 'रीति' के संबंध में अपना वस्तु-परक दृष्टिकोण रखा।

"भारतीय 'रीति' और पाश्चात्य 'स्टाइल' (शैली) में मौलिक अथवा तात्त्विक भेद है। 'रीति' सम्प्रदाय अपने उत्कर्ष काल में यूरोपीय 'स्टाइल' (शैली) के बहुत समीप पहुँच चुका है। 'स्टाइल' के समान 'रीति' में भी व्यक्ति तत्व की अवधारणा की गयी है।"[90]

'शैली', 'रीति' की उपेक्षा व्यक्तित्त्व पर अधिक बल देती है। "रीति तो काव्य रचना का ढंग है और शैली भाषात्मक अभिव्यक्ति की प्रणाली। 'शैली' वास्तव में उस साधन का नाम है जो वाणी की अभिव्यक्ति में अभिनव तथा समर्थ-शक्ति का संचार करे। xxx अतः गुणों के आधार पर की गयी विशेष पद रचनारूप की इस रीति को शैली से सर्वथा भिन्न ही मानना चाहिए।"[91]

एक भारतीय समक्षक ने तो "जितने कवि हैं उतनी ही रीतियाँ है, जितने लेखक है उतनी ही शैलियाँ है।"[92] ऐसा कहा है।

आचार्य विद्याधर शब्द और अर्थ के रसानुकूल निबंधन मे ही रीति की प्रतिष्ठा मानते है। 'रीति' और 'शैली' प्रारंभिक अवस्था में अधिक साम्य रखता था। किन्तु कालान्तर में साहित्य में वैचारिक दृष्टि एवं नवीन तत्वों के कारण आधुनिक काव्य-शास्त्र में 'रीति' के स्थान पर 'शैली' शब्द का प्रयोग अधिक हुआ।

शैली विषयक परिभाषाएँ

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई शैली विषयक परिभाषाएँ

आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'शैली' को 'स्टाइल' के पर्यायवाची रूप में स्वीकार किया है। पाश्चात्य साहित्य में Style (स्टाइल) के संबंध में अनेक मत व्यक्त हो चूके है। "प्लेटो विचार के तात्विक रूप को ही 'शैली' नाम देता है।"[93] अरस्तू वाणी वैशिष्ट्य को 'शैली' कहता है। शैली में वर्णन का उपयुक्त ढंग होता है।"[94] अरस्तू ने वाणी एवं वर्णन की अभिव्यक्ति के ढ़ंग को 'शैली' माना है।

बफ़न ने 'शैली ही व्यक्ति है' (Style is man himself) कहकर शैली मैं वैयक्तिकता के तत्त्व को प्रधानता दी है। उसके अनुसार - "शैली व्यक्ति की अभिव्यक्ति के साथ-साथ विचारों को व्यवस्थित करने और उन्हें गतिमय बनाने में भी सक्रिय रहती है।"[95]

मिड्ल्टन मरी ने अपनी पुस्तक "प्राब्लम ओफ स्टाइल" में शैली के लक्षणों का सूक्ष्म, अध्ययन विवेचन किया है। इनके अनुसार - "शैली भाषा की उस

विशेषता का नाम है जो किसी के भाव अथवा विचार को ठीक-ठीक अभिव्यक्त करती है।"[96] (Style is a quality of language, which communicates prcisely emotions or thoughts.)

"गेटे के अनुसार - किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है।"[97] (An author's style is a faithful copy of his mind).

एडमंड ग्रास ने शैली को "लेखक का मानस चित्र" कहा है।

स्लेट के अनुसार 'विचार तथा भाषा दोनों में शैली होती है।' (There is a style in thought as well as style in language.)

भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई शैली विषयक परिभाषाएँ

पाश्चात्य विद्वानों की तरह भारतीय विद्वानों ने भी 'शैली' को परिभाषा बद्ध करने की कोशिश की है।

हिन्दी साहित्य कोश में शैली को साहित्य का उपकरण माना है। "सत्य यह है कि शैली एक साधन है, उसका साध्य है व्यक्तिगत भाव, विचार अथवा अनुभूति को सर्वग्राह्य बनाना।"[98]

करूणापति त्रिपाठी "आकर्षक, रमणीय और प्रभावोत्पादक रीति-युक्त अभिव्यक्ति को शैली मानते हैं।"[99]

डॉ. गुलाबराय शैली को अभिव्यक्ति का रूप मानते है। ये यह भी स्वीकार करते है कि शैली में वैयक्तिकता तथा निर्वैयक्तिकता का मिश्रण हो। "शैली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते हैं जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप में दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है।"[100] गुलाबराय ने शैली को पाठक के मन तक पहुँचने का माध्यम माना है।

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने शैली को विचारों का परिधान बताते हैं और कहते हैं कि "भाव, विचार और कल्पना तो हममें नैसर्गिक अवस्था में वर्तमान ही रहती है और साथ ही साथ उन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी हममें रहती है। इसी शक्ति को साहित्य में शैली कहते है।"[101]

सीताराम चतुर्वेदी ने "शब्दों की कलात्मक योजना" और "भाषा संयोजन के वैचित्र्य" को शैली कहा है।"[102]

भोलानाथ तिवारी के अनुसार - "किसी भी कार्य के करने के विशिष्ट ढ़ंग का

नाम शैली है।" भाषिक अभिव्यक्ति के स्तर पर इन्होंने कहा है कि "भाषिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट ढंग को शैली कहते हैं।" अथवा "शैली भाषिक अभिव्यक्ति का वह ढंग है जो प्रयोजन के व्यक्तित्त्व तथा विषय से सम्बद्ध होता है तथा जो विचलन, चयन, सुसंयोजन, समानान्तरता एवं अप्रस्तुत विधान आदि सामान्य अभिव्यक्ति के लिए असुलभ उपकरणों पर आधृत होता है।"[103]

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई 'शैली' विषयक परिभाषाओं के आधार पर 'शैली' की विशेषताओं को इस तरह निरूपित किया जा सकता है।

1) शैली साहित्यकार के विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है।
2) शैली में साहित्यकार के व्यक्तित्त्व की पहचान तथा उसका वैशिष्ट्य दृष्टिगत होता है।
3) शैली में सामान्य भाषा से अलग विशिष्ट प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है।
4) शैली का संबंध कलात्मक अभिव्यक्ति से है। शैली अलंकरण है जिसके द्वारा व्याकरण की सभी संभावनाओं का उपयोग किया जा सकता है।
5) शैली संयोजनपूर्वक तथा चयन, विचलन, समानान्तरता, अप्रस्तुत विधान आदि उपकरणों की सहायता से प्रस्तुत होती है। इसके द्वारा "शैली" को भाषिक इकाइयों के स्तर पर विभाजित किया जा सकता है।

शैलीविज्ञान

'शैली' शैलीविज्ञान का मुख्य तत्त्व है। अभिव्यक्ति कला को हम 'शैली' कहते हैं किसी भी साहित्यकार की साहित्यिक कला की सार्थकता का श्रेय उसके शैली पर आधारित है। शैलीविज्ञान शब्द और अर्थ की समतुल्यता को ग्रहण करके चलता है। गद्य या पद्य का भाषागत अध्ययन करना शैली वैज्ञानिक अनुशीलन मानना उचीत है।

शैलीविज्ञान का व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ है- 'वह विज्ञान को शैली का अध्ययन करे।' शैलीविज्ञान अंग्रेजी 'Stylistics' (स्टाइलिस्टिक्स) का हिन्दी अनुवाद है। शैली को Style के अर्थ में ग्रहण किया गया है। यहाँ 'शैली' शब्द विशेष व्यंजक अर्थ में ग्रहण करना चाहिए। साहित्य मूल रूप से भाषिक कला है। भाषिक कला की अभिव्यक्ति शैली के द्वारा होती है। इस शैली का विश्लेषण नियम-संहिता है - 'शैलीविज्ञान'।

शैलीविज्ञान साहित्य की संरचना तथा गठन को समझने की किया है। या दूसरें शब्दों में कहे तो शैलीविज्ञान कृति का व्याकरणिक विश्लेषण है। जिसमें साहित्यकार की साहित्यिकता दैदिप्यमान होती है।

"शैलीविज्ञान के आदि आचार्य देमेत्रियस द्वारा लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व रचित अभिव्यक्ति संबंधी व्यावहारिक सिद्धांतो के प्रतिपाद ग्रन्थ 'पेरी हेरमेनेइअस' का अनुवाद विद्वानों ने 'अभिव्यक्ति विज्ञान' के नाम से किया है। यूनानी भाषा में 'हेरमेनेइअस' (Hermeneias) का अर्थ 'अभिव्यक्ति' तथा पेरि (Peri) का अर्थ - 'विषय में'। अंग्रेजी में इसी ग्रंथ का अनुवाद 'ओन स्टाइल' (On Style) के नाम से किया गया है।"[104] इस प्रकार का अर्थ पाश्चात्य साहित्य में माना जाता है।

शैलीविज्ञान की परिभाषाएँ

पाश्चात्य विद्वानो द्वारा दी गई शैलीविज्ञान विषयक परिभाषाएँ

टर्नर ने शैलीविज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि - "शैलीविज्ञान का अर्थ है शैली का अध्ययन - वैज्ञानिक या कम-से-कम व्यवस्थित अध्ययन जैसा कि शब्द की व्युत्पत्ति से ध्वनित होता है।"[105]

ज्योफ्रे लीच ने कहा है - "साहित्य में भाषागत प्रयोगों का अध्ययन शेलीविज्ञान है।"[106]

आर. फर्नेण्डेज रेताजे के अनुसार - "भाषा में जो कुछ तर्केत्तर है उस सबका अध्ययन शैलीविज्ञान का विषय है।"[107]

डब्ल्यू मेयेर के अनुसार - "शैलीविज्ञान के अंतर्गत भाषा का अध्ययन कला रूप में किया जाता है।"[108]

शैलीविज्ञान विषयक परिभाषाएँ

भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई शैलीविज्ञान विषयक परिभाषाएँ

नगेन्द्र के अनुसार - "शैलीविज्ञान साहित्य का एक मात्र विज्ञान हैं।"[109]

भोलानाथ तिवारी - "शैली के वैज्ञानिक अध्ययन को शैलीविज्ञान कहते हैं।"[110]

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने "शैलीविज्ञान एक नवीनतम समीक्षा - सिद्धांत है जिसका चिन्तन वस्तुपरक है और दृष्टि भाषावादी।"[111] यह कहकर शैलीविज्ञान को परिभाषित किया है।

डॉ. रामप्रकाश के अनुसार - "वह विज्ञान जो शैली का अध्ययन करे"।[112]

हरीश शर्मा के अनुसार - "शैलीविज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा भाषा के सौन्दर्य-मूलक पक्ष का अध्ययन संभव होता है।"[113]

वेदव्रत शर्मा लिखते हैं कि - "शैलीविज्ञान साहित्य का एक मात्र विज्ञान है। इसका क्षेत्र एक और भाषाविज्ञान में फैला हुआ है, दूसरी और कला में। यह भाषा और साहित्य से सम्पर्क रखने वाली एक नयी विधा है। जिसमें विज्ञान की वस्तु परकता को निर्वाहित करने की क्षमता के साथ सौन्दर्य-गवेषणा करने की भी क्षमता है।"[114]

उपयुक्त भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर 'शैलीविज्ञान' की विशेषताओं को निम्नांकित रूप से निरूपित किया जाता है।

1) शैलीविज्ञान साहित्य का एक मात्र विज्ञान है।
2) शैलीविज्ञान शैली का वैज्ञानिक अध्ययन है।
3) शैलीविज्ञान साहित्य के कलापक्ष को प्रस्तुत करता है।
4) शैलीविज्ञान के माध्यम से किसी भी साहित्यिक कृति का शैली तथा भाषागत प्रयोगों का अध्ययन किया जा सकता हैं।

शैली वैज्ञानिक अनुशीलन से तात्पर्य

शैलीविज्ञान का संबंध भाषागत इकाइयों से हैं जो विषय पक्ष को वर्णित करता है। शैली वैज्ञानिक अध्ययन चयन (Selection), विचलन (Deviation), समानान्तरता (Parollelism) आदि के आधार पर किया जाता है। विशिष्ट कृतियों का शैलीगत अध्ययन व्याकरणिक नियम-संहिता के आधार पर करना शैली वैज्ञानिक अनुशीलन है।

शैलीविज्ञान को परिभाषित करके उसकी अध्ययन प्रक्रिया के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए डॉ. कृष्णकुमार लिखते है कि - "शैलीविज्ञान काव्यकृति को अभिधापरक शब्द प्रतीकों का समुच्चय मानकर ही नहीं चलना वरन् प्रतीकों से उत्पन्न अभिव्यक्ति के विश्लेषण द्वारा कथ्य तक पहुँचने का प्रावधान भी करता है। कवि अपने माध्यम भाषा में चयन की प्रणाली प्रयुक्त करता है। शब्द-समूह, वाक्य-विन्यास तथा भाषा की अन्य मान्यता प्राप्त विधियों में से भी वह चयन करता हैं। जहाँ उपलब्ध विधियों से उसका काम नहीं चलता, वह उन विधियों से विपथन पर चयन का प्रमाण देता है। कुछ विद्वानों ने विभिन्न स्तरों पर प्रयुक्त

इस चयन-प्रक्रिया के अध्ययन को भी शैलीविज्ञान संज्ञा ने अभिहित किया है।"[115]

शैली वैज्ञानिक अनुशीलन किसी भी साहित्यिक कृति की ध्वनियों, व्याकरणिक इकाइयों, वाक्य शब्द समूह आदि का भाषा तात्त्विक या शैली तात्त्विक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भाषिक इकाइयों के प्रयोग का समन्वय चयन और विचलन आदि के अनुशीलन द्वारा शैलीविज्ञान किसी भी साहित्यिक रचना की विशेषताओं को प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन में 'भाषा क्या कहती है, कैसे कहती है' यही जानना उसका उद्देश्य है।

साहित्यिक रचना स्वंय एक ठोस यर्थाथ है, जो अपनी भाषा-शैली की परिधि में आबद्ध होती है। इसका व्याकरणिक अध्ययन शैली वैज्ञानिक अनुशीलन कहा जायेगा। अतः इन सब से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यिक रचना के व्याकरणिक अध्ययन का समावेश शैलीविज्ञान के अंतर्गत होता है।

शैलीविज्ञान के सन्दर्भ में भाषा के विविध रूप

भाषा

भाषा मनुष्य के आंतरिक विचारों, भावों और अनुभवों को परिभाषित करती है। मनुष्य की अभिव्यक्ति और व्यवहारिक आदान-प्रदान का माध्यम 'भाषा' है। समाज में विचार-विनिमय का साधन भाषा ही है। ज्ञान, स्थान(क्षेत्र), जाति और अवस्था आदि के आधार पर प्रायः भाषा भी अपना रूप बदल लेती है। हम दैनिक जीवन में सामान्य भाषा से लेकर साहित्यिक भाषा के साथ जुडे होते है। हमारे जीवन के व्यवहार में प्रायः हम सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं, परिचित और अपरिचित के साथ औपचारिक तथा अनौपचारिक भाषा प्रयोग करते हैं। रोज हम अखबार पढते हैं जिसमें सामान्य भाषा से लेकर साहित्यिक भाषा का परिचय मिलता है।

भाषा के संदर्भ में विचार करें तो हमारे सामने बोलचाल की घरेलू भाषा, प्रादेशिक बोली, क्रिसी व्यक्ति की निजी भाषा आदि सामने आती है। साहित्य की भाषा यह एक विशिष्ट प्रकार की भाषा है जिसका अध्ययन व्याकरणिक उपकरणो से संभव होता है।

भाषा का व्याकरण निर्देशात्मक होता है, फिर भी सामाजिक या विषय भेद के कारण भाषा प्रयोगानुसार बदलती रहती है। साहित्य में भी ऐसी भाषा होती है जो व्याकरणिक नियमों को तोड़ती है। यह विचलन के सिद्धांत पर आधारित होती है। इसकी चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे।

प्राय: हम कह सकते हैं कि भावों, विचारों, कल्पनाओं के अनुरूप भाषा की प्रकृति भी बदल जाती है।

सामान्य भाषा और साहित्य भाषा

भाषा के शैलीय रूप अनेक हो सकते हैं। सामान्य भाषा वह है जो हम दैनिक जीवन में बोलते है या प्रयोग करते हैं। साहित्य भाषा वह है जिसका प्रयोग विभिन्न साहित्य में होता है। सामान्य भाषा में भी साहित्यिक विचलन, अप्रस्तुत योजना का बोलचाल में प्रयोग होता है। सामान्य भाषा का आधार साहित्यिक भाषा हाता है। परन्तु साहित्यभाषा में व्याकरणिक उपकरणों का प्रयोग सामान्य भाषा से अधिक होता है।

सामान्य भाषा ➡ साहित्य ⇨ साहित्य भाषा

साहित्यकार सामान्य भाषा का भी अपने शैली वैशिष्ट्य से साहित्यिक या वैज्ञानिक भाषा बना देता है। सामान्य रूप से सामान्य भाषा सहज होती है जिससे सारा समाज समझ सकता है। साहित्यिक भाषा कृत्रिम रूप से विकसित की गई होती है। जिसे समाज का कुछ सिमित वर्ग या लोग ही समझ सकते है।

सामान्य भाषा की शब्दावली और बुनावट समझने में सरल है। इससे विपरित साहित्यिक भाषा की शब्दावली विशिष्ट और उच्च स्तरीय होती है। जिसमें प्रचलित, अप्रचलित, नवनिर्मित शब्द-प्रयोग, जटिल बहुस्तरीय बुनावट या लक्षणा-व्यंजना आदि का प्रयोग इसे कठिन बनाता है। सामान्य भाषा में आसान तथा सरल शब्दावली होती है। साहित्य भाषा में कभी-कभी ऐसी कठिन शब्दावली का प्रयोग होता है, जो हम सामान्य भाषा में नहीं करते। जैसे फूल के लिए प्रसून, हवा के लिए मरूत, नदी के लिए पयस्विनी या उदधि। साहित्य भाषा में एक शब्द के अनेक पर्याय-वाची शब्दों में प्रयोग होता है तथा एक शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। साहित्य भाषा में शब्द और अर्थ का सौन्दर्य होता है। इसमें भाषा की बुनावट का आधार वैज्ञानिक होता है। भाषिक उपकरण उसे सुन्दर बनाते है।

सामान्य भाषा से ही साहित्य भाषा उत्पन्न हुई है। किन्तु भाषा के व्याकरणिक उपकरणों के प्रयोग से साहित्यिक भाषा सामान्य भाषा से अलग विशिष्ट बन जाती है। सामान्य भाषा बर्हिमुखी होती है। जबकी साहित्य भाषा अंतर्मुखी होती है क्योंकि साहित्य भाषा में साहित्यकार के आंतरिक भावों का

चित्रण होता है। साहित्य की भाषा में लचीलापन, गत्यात्मकता, काव्यात्मकता होती है। साहित्य भाषा विषयानुरूप होती है। जैसे प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण माधुर्य, प्रासाद गुण युक्त सुललित, कोमलकांत पदावलीयुक्त, अलंकारिक उपमा युक्त, चमत्कारिक होता है। समाज में छिपी विसंगतियों एवं विषमताओं को उजागर करने के लिए व्यंग्यात्मक, कटु, आलोचनात्मक, प्रहारात्मक भाषा का प्रयोग होता है। इस प्रकार साहित्य भाषा में विषय के अनुसार परिवर्तन होता है।

व्यंग्य भाषा

सामान्य भाषा के मूल आधार से ही व्यंग्य भाषा का निर्माण होता है। साहित्य भाषा में भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग होता है। जो हमारी दैनिक जीवन के व्यवहारीक भाषा से अलग होता है। कल्पना, प्रहारात्मकता और व्यंग्यात्मकता के कारण साहित्य भाषा को नया आयाम व्यंग्य भाषा का मिलता है।

सामान्य भाषा – साहित्य – साहित्य भाषा – व्यंग्य – व्यंग्य भाषा

व्यंग्य भाषा में जो संदेश निहित होता है वह व्यंग्यकार के कटु अनुभवों की आंतरिक अनुभूति होती है। व्यंग्य भाषा में लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ या बिम्बार्थ के द्वारा अर्थ और शब्द को प्रस्तुत करते है। इसमें शब्द और अर्थ का संबंध सामान्य न होकर के विशिष्ट होता है। व्यंग्य भाषा में प्रचलित शब्द का अर्थ सामान्य भाषा में प्रयुक्त न होकर अप्रचलित और विशिष्ट होता है। जैसे – 'गधा' शब्द सामान्य भाषा में चार पैरवाला प्राणी कहेगें। किन्तु व्यंग्य भाषामें इसका व्यंग्यार्थ से अर्थ 'मूर्ख' हो सकता है। यहाँ पर अभिधा शब्द-शक्ति से अर्थ न ग्रहण करके लक्षणा या व्यजना शक्ति द्वारा अर्थ ग्रहण किया जाता है।

व्यंग्य भाषा में प्रहार, आक्षेप, आलोचना, भर्त्सना आदि मनोवैज्ञानिक भावों में विसंगतियों को चित्रित किया जाता है। व्यंग्यकार अपनी व्यंग्यात्मक कल्पना के सहारे व्यंग्य भाषा के नए-नए रूपों का संधान करता हैं। सामान्य भाषा तो मात्र संप्रेषण का कार्य करती है। व्यंग्य भाषा का विषय और शैली के साथ परिवर्तन होता है। व्यंग्य भाषा का उद्देश्य सर्जनात्मक होता है।

व्यंग्य भाषा में पैनापन अधिक होता है। इतना ही नहीं इसमें प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता और ध्वन्यात्मकता की प्रधानता रहती है। व्यंग्य भाषा नश्तर की तरह लगती है और कभी खंजर की तरह चुभोती है। इसलिए व्यंग्य-लेखक को अपनी

भाषा के प्रति सतर्क रहना आवश्यक है। "जैसे नाइ हजामत बनाने से पहले अपने अस्तूरे को तेज कर लेता है और ऊँगली पर धार की परख भी कर लेता है, उसी प्रकार व्यंग्य-लेखक को अपनी भाषा की जांच कर लेनी चाहिए। व्यंग्य-लेखक की भाषा में धार और नौक दोनों जरूरी हैं।"[116]

व्यंग्य भाषा में ग्राम्य प्रयोगों, गालियों आदि का अनुपात होता हैं क्योंकि इसके बिना भाषा में व्यंग्यात्मकता नहीं आती। ग्राम्य भाषा के शब्दों में व्यंजक होता है जो सामान्य भाषा के शब्दों से ज्यादा व्यंग्यार्थ को निरूपित करता है।

सामान्य भाषा और व्यंग्य भाषा

भाषा जब विशेषताओं से सम्पन्न होने लगती है तो वह सामान्य भाषा से विशिष्ट होकर साहित्यिक रूप धारण करती है। यह साहित्यिक भाषा में व्यंग्यात्मकता आती है तो वह व्यंग्य भाषा का स्वरूप धारण करती है।

सामान्य भाषा का माध्यम 'शब्द' होता है, व्यंग्य भाषा में शब्द अपने मूल अर्थ से हटकर एक अतिरिक्त अर्थ प्रदान करते हैं। सामान्य भाषा का उद्देश्य मानवीय अभिव्यक्ति का आदान-प्रदान करना यानी व्यवहारिक बात-चीत का होता है, व्यंग्य भाषा का उद्देश्य विसंगतियों, विडंबनाओं, विषमताओं आदि को व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। व्यंग्य भाषा में व्यंग्यकार की विशेषाभिव्यंजना को पाठक के समक्ष भाषिक संरचना द्वारा अभिज्ञात कराया जाता है।

सामान्य भाषा एक पारदर्शी शीशा है, जो आर-पार की किसी भी वस्तु को यथावत दिखाता है, व्यंग्य भाषा सामाजिक दर्पण है जो वस्तु का किसी भी कोने से बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करती है। सामान्य भाषा बोलने में सीधी और समझने में सरल है जिसमें व्याकरणिक उपकरणों की आवश्यकता बहुत कम होती है। सामान्य भाषा को परिमार्जित बनाने के लिए शैलीय उपकरणो की आवश्यकता बहुत कम होती है। किन्तु व्यंग्य भाषा को परिमार्जित बनाने के लिए शैलीय उपकरणों की आवश्यकता अवश्य होती है। यह शैलीय उपकरण व्यंग्य-भाषा को वैशिष्ट्य प्रदान करते है। व्यंग्यकार समाज में जो देखता है उस अनुभूति और संवेदना को व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत करता है। व्यंग्य को संप्रेषित करने के लिए शब्दों में संदर्भगत अर्थों को ढुंढ कर लिखता है। योग्य शब्दों का चयन करता है और कभी-कभी नये शब्दों का निर्माण करता है।

इसी तरह व्यंग्य निबंधों की भाषा का शैली वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन

करने के लिए सर्वप्रथम हमें व्यंग्य निबंध की शब्द रचना पर प्रकाश डालना आवश्यक होगा। शब्द-संरचना व्याकरण का विषय है, इसमें शब्दों तथा वाक्यों का चयन तथा विचलन आता है। इसके अतिरिक्त शब्द-शक्ति, समानान्तरता, अप्रस्तुत योजना आदि शैली वैज्ञानिक अध्ययन के अंतर्गत आते है। इन सब का सोदाहरण अध्ययन परवर्ती अध्यायों द्वारा किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य में हास्य रस (नई दिल्ली, 1985) पृ. 19.
2) एल. जे. पाट्स, कामदी, पृ. 153.
3) डा. भगवानदास कहार, हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन (बड़ौदा, 1992) पृ. 70-71.
4) विश्वनाथ (संपादक - डॉ. सत्यव्रत सिंह) साहित्य दर्पण, पृ–75.
5) रामखेलावन पाण्डे, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–3, पृ. 741.
6) डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी, हिन्दी का स्वतंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य (कानपुर, 1978, पृ. 51.
7) डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीर्त्ता, आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, पृ. 11.
8) डॉ. बापूराव देसाई, हिन्दी व्यंग्य और व्यंग्यकार (कानपुर, 1997), पृ.34.
9) कौसतुभ, संस्कृत शब्दार्थ, पृ.115.
10) डा. भगवानदास कहार, हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 36.
11) Oxford English Dictionary, Vol.-9, P.119.
12) Webster's New International Dictionary, P-2017.
13) Eneyclopedia Britannica - Vol.-20, P-5.
14) Meridith, Idea of comedy (London, 1943) P.79.
15) जोन.एम.बुलिट, जोनाथन स्विफट एण्ड दि एनाटोमी ऑफ सटायर (लन्दन, 1961) पृ–39.
16) एल. जे. पोट्स, कामदी, पृ.-153.

17) Swift, The Battle of the books. (1704) P.-6.
18) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर (वारणसी, 1951) पृ.-164.
19) राजकुमार वर्मा, रिमझिम, पृ.-13.
20) डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य में हास्य रस (नई दिल्ली, 1957) पृ. 42.
21) डॉ. कृष्ण देव झारी, बिभत्स रस और हिन्दी साहित्य (दिल्ली, 1966) पृ.-131.
22) डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, हिन्दी साहित्य में विविध वाद (दिल्ली, 1955) पृ.-377.
23) हरिशंकर परसाई, सदाचार का तावीज (दिल्ली, 1967) पृ. -10.
24) डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीरत्ताँ, आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, पृ. 23.
25) डॉ. शांतारानी, हिन्दी नाटकों में हास्य तत्त्व (इलाहाबाद, 1969) पृ.73.
26) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, (दिल्ली, 1973) पृ. - 28.
27) डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य (कानपुर, 1978), पृ.-56.
28) डॉ. भगवानदास कहार, हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अध्ययन, (मार्च - 1992, बड़ौदा) पृ. 48.
29) डॉ. सुरेश माहेश्वरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन (कानपुर, 1994), पृ.35.
30) जेम्स हने, सटायर एन्ड सटायरीस्ट, P - 35.
31) An Essay on commedy, Meridith - P - 84.
32) शारदातनयः भाव प्रकाश, पृ. - 47.
33) डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ. 15, 42.
34) डॉ. उषा शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंध साहित्य में व्यंग्य (दिल्ली, 1984) पृ.26.
35) हास्यरस (लखनऊ, 1934), पृ. -18.
36) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 29.
37) डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृ.-58,59,60.

38) व्यंग्य क्या - व्यंग्य क्यों? (संपादक - डॉ. श्यामसुंदर घोष) श्री रामनारायण उपाध्याय का लेख, पृ. 66.
39) द ओक्सफोर्ड इग्लिश डिक्शनरी, वाल्यूम-8, P. 660.
40) Sarcasm means precisely what is says, but in a sharp, bitter actting, caustic or acerb manner, It is the instrument of indignation, a weapon of affeence. - शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 30.
41) वही, पृ.-30.
42) डॉ. भगवानदास कहार, हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन, पृ. 50.
43) वही, पृ.-49.
44) बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ. 15.
45) डॉ. भगवानदास कहार, हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन, पृ. 50.
46) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 31.
47) वही, पृ. -35.
48) डॉ. सुरेश माहेश्वरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन, पृ.-14.
49) प्रो. जगदीश पाण्डे, हास्य के सिद्धांत तथा मानस में हास्य.
50) डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ. 23.
51) वही, पृ.-25.
52) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 34.
53) डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य में हास्य रस, पृ. 26.
54) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 37.
55) वही, पृ.-37.
56) वही, पृ.-89.
57) डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाए, (भूमिका), पृ. 12.
58) डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीस्ता, आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, पृ. 15-16.
59) डॉ. हरिशंकर दुबे, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य, (1997), पृ.-20.
60) डॉ. सुरेश माहेश्वरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन, पृ.-36.
61) डॉ. आनंद प्रकाश गौतम, हिन्दी के व्यंग्य निबन्ध, (1990), पृ.-15.

62) हरिशंकर परसाई, पगदंडियों का जमाना, पृ.-91.
63) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 83.
64) हरिशंकर परसाई, परसाई रचनावली खण्ड-1, (चूहा और मैं) पृ.-16.
65) डॉ. श्यामसुन्दर घोष, व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों, पृ.-3.
66) डॉ. हरिशंकर दुबे, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य में व्यंग्य, पृ.-24.
67) डॉ. सुरेश माहेश्वरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य का मूल्यांकन, पृ.-39.
68) गुडमैन, ब्युसेंस आफ लिटररी ऐसेज, पृ.-72.
69) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 88.
70) डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी व्यंग्य के प्रतिमान, (1988, महेसाना) पृ.-111.
71) हम्बर्ट वोल्फ, नोट्स ओन वर्स सटायर (ओक्सफोर्ड) (लंडन, 1954), पृ.-71.
72) वीरेन्द्र मेंहदीस्ता, आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, अध्याय -1, पृ. 3.
73) डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृ.-69.
74) डॉ. उषा शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी निबंध में व्यंग्य, पृ.-26.
75) डॉ. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ. - 69.
76) डॉ.बरसानेलाल चतुर्वेदी, आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य, (नई दिल्ली, 1973) पृ. 23.
77) डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृ.-73.
78) डॉ. वीरेन्द्र मेंहदीस्ता, आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, (1978), पृ. 21.
79) डॉ. भगवानदास कहार, हिन्दी और गुजराती कहानियों में हास्य और व्यंग्य का तुलनात्मक अनुशीलन, (बड़ौदा, 1992) पृ. 63.
80) रोशनलाल सुरीरवाला, पत्नी शरणं गच्छामि, 'बरसात', पृ.-56.
81) अमृतराय, बरसात, (1973), पृ.-107.
82) रवीन्द्रनाथ त्यागी, उर्दू हिन्दी हास्य - व्यंग्य (1978) 'कर्मों का बन्धन और गीत गोविन्द', पृ.-231.
83) हरिशंकर परसाई, निठल्ले की डायरी, (1968), पृ.-34-35.
84) नरेन्द्र कोहली, जगाने का अपराध (1973), पृ.-80.

85) श्रीराम ठाकुर 'दादा', मेरी प्रतिनिधि रचनायें, (1981), पृ.-22.
86) श्रीलाल शुक्ल, अंगद का पाँव, (1980), पृ.-158
87) हरिशंकर परसाई, वैष्णव की फिसलन (1976), पृ.-108.
88) पंत, ग्राम्य (पाँचवा संस्करण), 'वे आँखें', पृ.-25.
89) डॉ. वेदव्रत शर्मा, निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, (1977), पृ.-1.
90) वही, P - 3.
91) सीताराम चतुर्वेदी, समीक्षा-शास्त्र, पृ.-598.
92) बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्य शास्त्र, पृ.-137.
93) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश
94) डॉ. नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ.-55.
95) दृष्टव्य : बफन, डिस्कोर्स ओफ स्टाइल.
96) Midilton murry, Problem of style, P.-71.
97) टी. एडवर्ड्स, धी न्यु डिक्सनरी ओफ थाट.
98) हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ.-836.
99) करूणापति त्रिपाठी, शैली, पृ.-28-29.
100) गुलाबराय, सिद्वांत और अध्ययन, पृ.-190.
101) श्यामसुन्दर दास, साहित्यालोचन, पृ.-286.
102) सीताराम चतुर्वेदी, समीक्षा शास्त्र, पृ. 522, 544.
103) भोलानाथ तिवारी, शैलीविज्ञान, पृ.-21.
104) निलम कालड़ा, भवानीप्रसाद मिश्र की काव्य भाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, पृ.-21-22.
105) जी. डब्ल्यू. टर्नर, स्टाइलिस्टिक्स्, पृ.-7.
106) ज्योफ्रे लीच्, ए लिग्विस्टिक्स् गाइड टुं ईंग्लिश पोयट्री, P.-12.
107) दृष्टव्य : हरिश शर्मा, भाषा विज्ञान की रूपरेखा.
108) वही
109) नगेन्द्र, शैलीविज्ञान, पृ.-6.
110) भोलानाथ तिवारी, शैलीविज्ञान, पृ.-23.
111) डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, शैलीविज्ञान और आलोचना की नई भूमिका - पृ.-4.

112) डॉ. रामप्रकाश, समीक्षा-सिद्धांत, पृ.194.
113) डॉ. हरीश शर्मा, भाषा-विज्ञान की रूपरेखा, पृ.-344
114) डॉ. वेदव्रत शर्मा, निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, पृ.-32-33.
115) कृष्णकुमार शर्मा, शैलीविज्ञान की रूपरेखा, पृ.-13
116) डॉ. श्यामसुन्दर घोष, व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों, पृ.-119. 'व्यंग्य और व्यंग्य-विधा'.